ग्यारहवाँ अध्याय

अर्जुन को श्रीकृष्ण के विराट् रूप को देखने की इच्छा हुई। उसने श्रीकृष्ण से अपना विराट् रूप दिखाने की प्रार्थना की। श्रीकृष्ण को भी अपने अनन्य भक्त अर्जुन की प्रार्थना स्वीकार करनी पड़ी, परन्तु भगवान् के विराट् रूप को चर्म चक्षुओं से कभी भी नहीं देखा जा सकता है। उसके लिये दिव्य नेत्रों की आवश्यकता पड़ती है। श्रीकृष्ण ने अर्जुन को दिव्य चक्षु प्रदान कर दिये। यह समूचा संसार चराचर भगवान् का ही तो रूप है। उसका प्रकाश चारों ओर फैला हुआ है। उसकी शक्ति अपार है। वही वायु, अग्नि, वरुण, चंद्रमा, ब्रह्म आदि हैं। वस्तुतः सच्चा भक्त सारे संसार को परमात्मा का ही रूप समझता हैं क्योंकि परमात्मा कण-कण और क्षण-क्षण में हैं।

उगते हुए सूर्य को देखिए। आपको परमात्मा के विश्वरूप की एक किरण दिखाई पड़ेगी। मुस्कुराते हुए बालक को देखिए आपको विश्वरूप की आत्मा दिखाई देगी; अपने विचारों के प्रवाह को देखते रहिए आप चैतन्य शक्ति में प्रवेश कर जाएंगे। यह ईश्वर का विश्वरूप है। अर्जुन श्रीकृष्ण के विराट् रूप को देखकर आश्चर्यचकित रह गया। वह रूप अत्यंत विकराल था। उसे देखकर चकित होना स्वाभाविक ही था। उस रूप में उसे समूचा संसार दिखाई दिया था। सारे महाभारत के युद्ध का दृश्य भी उसे स्पष्ट दिखाई दिया। सारे योद्धा मृतक दिखाई दिये। उस दृश्य को देखकर अर्जुन ने फिर वही सौम्यरूप दिखाने की प्रार्थना की उसने अपने अपराधों के लिये क्षमा माँगी। श्रीकृष्ण ने पुनः सौम्य रूप धारण करके अर्जुन को परमात्मा का अनन्य भक्त होने का उपदेश दिया। श्रीकृष्ण ने अर्जुन को समझाया कि अपने स्वार्थ, अहंकार, मोह को अलग रखे। संसार में सब प्राणियों के साथ मित्रवत् व्यवहार करे तभी वह प्रभु को प्राप्त कर सकते हैं।

1. मदनुग्रहाय परमं गुह्यमध्यात्मसंज्ञितम्।
यत्त्वंयोक्तं वचस्तेन मोहोऽयं विगतो मम।।

कहा फिर अर्जुन ने ऐ मोहतरिम,
किया आपने मुझ पे लुत्फ़-ओ करम।
बताया ख़फ़ी अध्यात्म का राज़,
गया मोह आँखें हुई दिल की बाज़।।

शब्दार्थ –मदनुग्रहाय–मेरे पर कृपा करने के लिये; परमम्–परम; गुह्यम्–गोपनीय; अध्यात्मसंज्ञितम्–अध्यात्म नाम वाला; तेन–जो; त्वया–तूने; उक्तम्–कहा है; वचः–वचन; तेन–उससे; अयम्–यह; विगतः–दूर हो गया है; मम–मेरा ।

मोहतरिम–आदरणीय; लुत्फ़-ओ कर्म–कृपा; खफ़ी–सूक्ष्म; बाज़–खुलना ।

भावार्थ –मुझ पर कृपा करने के लिये जो परम गोपनीय अध्यात्म नाम का उपदेश आपने मुझे सुनाया है, उसके कारण मेरा मोह दूर हो गया है ।

2. भवाप्ययौ हि भूतानां श्रुतौ विस्तरशो मया ।
त्वत्तः कमलपत्राक्ष माहात्म्यमपि चाव्ययम् ।।

कंवल-नैन मैंने सुना आप से,
कि अजसाम किस तरह पैदा हुए ।
जो पैदा हुए होंगे क्योंकर फ़ना,
तुम्हीं को है अज़मत तुम्हीं को बका ।।

शब्दार्थ –भवाप्ययौ–उत्पत्ति तथा विनाश; भूतानाम्–जड़-चेतन प्राणियों की; हि–क्योंकि; श्रुतौ–सुने हैं; विस्तरशः–विस्तार से; मया–मैंने; त्वत्तः–तुझसे; कमलपत्राक्ष–हे कमलपत्र के समान आँखों वाले; माहात्म्यम्–महत्त्व; अपि–भी; च–और; अव्ययम्–अविनाशी ।

अजसाम–बहुत से शरीर; फ़ना–नाश; अज़मत–महात्म्य; बका–अविनाशी सत्ता ।

भावार्थ –हे कमलनयन कृष्ण ! मैंने तुझसे जड़-चेतन की उत्पत्ति तथा विनाश के सम्बन्ध में और आपकी महिमा का अनुभव भी किया है ।

3. एवमेतद्यथाऽऽत्थ त्वमात्मानं परमेश्वर ।
द्रष्टुमिच्छामि ते रूपमैश्वरं पुरुषोत्तम ।।

किया आपने हाल जो कुछ ब्याँ,
वही सच है परमेश्वर बेगुमाँ ।
है पुरुषोत्तम अब इशतियाक इस कदर,
कि दीदार-ए हक़ देख लूँ इक नज़र ।।

शब्दार्थ –एवम्–ऐसा; एतत्–यह; यथा–जैसा; आत्थ–तूने कहा है; त्वम्–तू; आत्मानम्–आत्मा को; द्रष्टुम्–देखने के लिये; इच्छामि–इच्छा करता हूँ; ते–तेरे; रूपम्–रूप को; ऐश्वरम्–ईश्वरीय; पुरुषोत्तम–हे पुरुषों में श्रेष्ठ श्रीकृष्ण ।

ब्याँ–वर्णन; बेगुमाँ–निःसन्देह; एशतियाक–उत्सुक्ता; दीदार-ए हक़्–प्रभु दर्शन ।

भावार्थ –हे परमेश्वर ! जैसा तूने अपने विषय में कहा है अगर यह बात ऐसी ही है, तो हे पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण ! मैं तेरे ईश्वरीय रूप को देखना चाहता हूँ ।

4. मन्यसे यदि तच्छक्यं मया द्रष्टुमिति प्रभो ।
योगेश्वर ततो मे त्वं दर्शयात्मानमव्ययम् ।।

प्रभु आपका हो अगर यह ख़्याल,
कि दर्शन की है मुझको ताब-ओ मजाल ।
तो योग-ईश्वर लुत्फ़ फरमाइये,
मुझे ला-फ़ना रूप दिखलाइये ।।

शब्दार्थ –मन्यसे–तू मानता है; तत्–वह; शक्यम्–सम्भव; मया–मुझसे; द्रष्टुम्–दर्शन करने के लिये; इति–इस प्रकार; ततः–फिर; मे–मेरा, मुझे; त्वम्–तू; दर्शय–दिखा; आत्मानम्–अपने-आपको; अव्ययम्–अविनाशी को ।

मजाल–समर्थता; लुत्फ़–कृपा; ला-फ़ना–अविनाशी ।

भावार्थ –हे प्रभो ! यदि तू समझता है कि मेरे लिये तेरा वह रूप दर्शन कर सकना सम्भव है, तो हे योगेश्वर ! उस अविनाशी स्वरूप का मुझे दर्शन कराइये ।

5. पश्य में पार्थ रूपाणि शतशोऽथ सहस्रशः ।
नानाविधानि दिव्यानि नानावर्णाकृतीनि च ।।

कर अर्जुन नज़र देख मेरे सरूप,
मेरे सैंकड़ों और हज़ारों हैं रूप ।
मेरी पाक हस्ती के नये रंग देख,
नये रूप देख और नये ढंग देख ।।

शब्दार्थ –पश्य–देख; मे–मेरा; पार्थ–हे अर्जुन! रूपाणि–रूपों को; शतशः–सैकड़ों; अथ–और; सहस्रशः–हज़ारों; नानाविधानि–बहुत प्रकार के; दिव्यानि–दिव्य; नानावर्णाकृतीनि–नाना प्रकार के वर्ण एवं आकृति वाले; च–भी।

नये रंग–दृश्य।

भावार्थ –हे अर्जुन! तू मेरे सैकड़ों, हज़ारों और नाना वर्ण एवं नाना आकृति वाले अलौकिक रूपों को देख।

6. पश्यादित्यान् वसून् रुद्रानश्विनौ मरुतस्तथा।
बहून्यदृष्टपूर्वाणि पश्याश्चर्याणि भारत।।

वसु रुद्र आदित्य की सूरतें,
दो आश्विन भी मारुत की भी मूरतें।
तो भारत के फ़रज़न्द सब देख ले,
जो देखा नहीं तूने अब देख ले।।

शब्दार्थ –पश्य–देख; आदित्यान्–आदित्यों को; वसून्–वसुओं को; रुद्रान–रुद्रों को; अश्विनौ–अश्विनी-कुमारों को; मरुतः–49 मरुतों को; बहूनि–बहुत; अदृष्टपूर्वाणि–अदृष्टपूर्व, जिन्हें पहले नहीं देखा है; आश्चर्याणि–आश्चर्यों को।

फ़रज़न्द–पुत्र।

भावार्थ –हे अर्जुन! आदित्यों, वसुओं, रुद्रों, दोनों अश्विनी-कुमारों और मरुतों को देख। और भी अदृष्टपूर्व आश्चर्यों को देख, ऐसे आश्चर्य जो पहले कभी देखे ही नहीं गये।

7. इहैकस्थं जगत्कृत्स्नं पश्याद्य सचराचरम्।।
मम देहे गुडाकेश यच्चान्यद् द्रष्टुमिच्छसि।।

जो कुछ चाहे तो देख तन में मेरे,
जहाँ सब है अर्जुन बदन में मेरे।
यहीं सारा आलम नमूदार देख,
तू साकन भी देख और सैय्यार देख।।

शब्दार्थ –इह–यहाँ; एकस्थम्–एक ही जगह स्थित हुए; कृत्स्नम्–सारे; पश्य–देख; अद्य–आज; सचराचरम्–जड़ और चेतन सृष्टि के

सहित; मम–मेरे; देहे–शरीर में; गुडाकेश–हे अर्जुन; यत्–जो; च–और; अन्यद्–दूसरे को; द्रष्टुम्–देखना; इच्छसि–चाहता है ।
आलम–सृष्टि; नमूदार–प्रगट; साकन–जड़; सैयार–चेतन ।

भावार्थ –हे अर्जुन ! तू आज यहाँ मेरे शरीर में सारे जगत् को चर और अचर सहित एक स्थान पर सिमटा हुआ देख, अन्य कुछ भी अगर तू देखना चाहता है उसे भी देख ।

8. न तु मां शक्यसे द्रष्टुमनेनैव स्वचक्षुषा ।
दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगमैश्वरम् ।।

मेरी दीद गर तुझ को मनजूर है,
तेरी आँख का कब यह मक्दूर है ।
मैं देता हूँ तुझ को ख़ुदाई बसर,
मेरे इस शही योग पर कर नज़र ।।

शब्दार्थ –तु–तो; माम्–मुझको; शक्यसे–समर्थ होगा; द्रष्टुम्–देखनेके लिये; अनेन–इस; एव–ही; स्वचक्षुषा–अपनी आँख से; दिव्यम्–दिव्य; ददामि–प्रदान करता हूँ । ते–तुझको; चक्षुः–आँख; पश्य–देख; मे–मेरे; योगम्–योग को; ऐश्वरम्–ईश्वरीय ।
दीद–दर्शन; मनजूर–स्वीकार; मक्दूर–समर्थता; खुदाई बसर–दिव्य नेत्र; शही–ईश्वरीय ।

भावार्थ –परन्तु तू मुझे इन अपनी आँखों से नहीं देख सकेगा, मैं तुझे दिव्य चक्षु देता हूँ इस से मेरी ईश्वरीय शक्ति को देख ।

9. एवमुक्त्वा ततो राजन् महायोगेश्वरो हरिः ।
दर्शयामास पार्थाय परमं रूपमैश्वरम् ।।

महाराज ! अर्जुन से कह कर यह बात,
हरि यानीं योग-ईश्वर पाक-ज़ात ।
दिखाने लगे शान-ए-आली का रूप,
तो अर्जुन ने देखा ख़ुदाई सरूप ।।

शब्दार्थ –एवम्–इस प्रकार; उक्त्वा–कहकर; ततः–तब; राजन्–हे राजन् ! महायोगेश्वरः–महान् योगेश्वर; हरिः–श्री कृष्ण ने; दर्शयामास–दिखाया; पार्थाय–पृथा के पुत्र अर्जुन को; परमम्–श्रेष्ठ;

रूपम्—रूप को; ऐश्वरम्—ईश्वरीय ।
पाक-ज़ात—पावन सत्ता ।

भावार्थ —हे राजन् ! इस प्रकार कह कर महान् योगेश्वर श्रीकृष्ण ने अर्जुन को अपना दिव्य स्वरूप दिखलाया ।

10. अनेकवक्त्रनयनमनेकाद्भुतदर्शनम् ।
अनेकदिव्याभरणं दिव्यानेकोद्यतायुधम् ।।

अनेक उसकी आँखें तो चेहरे अनेक,
निगाहें अनेक उनमें जलवे अनेक ।
अनेक उसके पुरनूर ज़ेवर सजे,
ख़ुदाई वो हथियार उभरे हुए ।।

शब्दार्थ —अनेकवक्त्रनयनम्—जिसके अनेक मुख, नयन हों; अनेकाद्भुत-दर्शनम्—जिसके दर्शन अनेक व अत्यधिक आश्चर्यकर हों; अनेकदिव्याभरणम्—अनेक दिव्य अलंकारों से युक्त; दिव्यानेको-द्यतायुधम्—जिसने अपने अनेक दिव्य शस्त्रों को उठा रखा है ।
जलवे—दृश्य; ख़ुदाई—दिव्य ।

भावार्थ —वह रूप अनेक मुखों वाला था । अनेक नेत्रों वाला था, उसमें अनेक अद्भुत दृश्य थे, उसने अनेक दिव्य अलंकार धारण किये हुए थे, उसने अनेक दिव्य शस्त्र उठा रखे थे ।

11. दिव्यमाल्याम्बरधरं दिव्यगन्धानुलेपनम् ।
सर्वाश्चर्यमयं देवमनन्तं विश्वतोमुखम् ।।

ख़ुदाई वो कण्ठे ख़ुदाई लिबास,
ख़ुदाई उबटने ख़ुदाई वो बास ।
वो लाइन्तहाई खड़ी रूबरू,
जो रुख उसका देखो तो रुख चार-सू ।।

शब्दार्थ —दिव्यमाल्याम्बरधरम्—दिव्य माला तथा वस्त्रादि को धारण करते हुए को; दिव्यगन्धानुलेपनम्—दिव्य सुगन्ध वाले अनुलेपनों से युक्त को; सर्वाश्चर्यमयम्—सर्व आश्चर्यों से युक्त; देवम्—देव को; अनन्तम्—अन्त रहित; विश्वतोमुखम्—चारों ओर मुखों वाले ।

लाइन्तहाई–अनन्त; रूबरू–सम्मुख; रुख–मुख; चार सू–चहुँ ओर ।

भावार्थ –उसने अनेक दिव्य मालाएँ और वस्त्र धारण किये हुए थे, उसके दिव्य सुगन्धित लेप लगे हुए थे, वह देव सब तरह से आश्चर्यमय, तेजमय, अनन्त था, उसके मुख चारों ओर थे ।

12. दिवि सूर्यसहस्रस्य भवेद् युगपदुत्थिता ।
यदि भाः सदृशी सा स्याद् भासस्तस्य महात्मनः ।।

फ़लक पर निकल आयें सूरज हज़ार,
बा-यक वक्त मिल कर हों सब नूरबार ।
तो धुंधली-सी समझो तुम उसकी मिसाल,
महा-आत्मा का था इतना जलाल ।।

शब्दार्थ –दिवि–आकाश में; सूर्यसहस्रस्य–एक हज़ार सूर्यों की; भवेद–होवे; युगपद्–एक साथ; उत्थिता–उदित; भाः–प्रकाश; सदृशी–समान; सा–वह; स्याद्–होवे; भासः–प्रकाश या चमक के; तस्य–उस; महात्मनः–महात्मा की ।

फ़लक–गगन; बा-यक–एक ही समय; नूरबार–प्रकाशित; मिसाल–उदाहरण; जलाल–रोशनी ।

भावार्थ –यदि आकाश में हज़ारों सूर्य एक साथ उदय हों, तो उनका प्रकाश शायद परमपुरुष के इस विश्वरूप के तेज की समता कर सके ।

13. तत्रैकस्थं जगत् कृत्स्नं प्रविभक्तमनेकधा ।
अपश्यद् देवदेवस्य शरीरे पाण्डवस्तदा ।।

जो अर्जुन ने देखा कि जलवा नुमा,
है सब देवताओं का वो देवता ।
उसी के तन-ए पाक में है अयाँ,
ग्रोहों में गौलों में सारा जहाँ ।।

शब्दार्थ –तत्र–वहाँ, उसमें; एकस्थम्–एक ही जगह स्थित; कृत्स्नम्–सारे; प्रविभक्तम्–बँटे हुए; अनेक कथा–अनेक प्रकार से; अपश्यत्–देखा; देवदेवस्य–देवाधिदेव के; शरीरे–शरीर में; पाण्डवः–पाण्डु के पुत्र अर्जुन ने; तदा–तब ।

जलवा नुमा–अनोखा दीदार; अयाँ–प्रगट ।

भावार्थ –उस समय अर्जुन श्रीकृष्ण के विश्वरूप में एक ही स्थान पर स्थित हजारों भागों में विभक्त ब्रह्माण्ड के अनन्त अंशों को देख सका ।

14. ततः स विस्मयाविष्टो हृष्टरोमा धनंजयः ।
प्रणम्य शिरसा देवं कृतांजलिरभाषत ।।

तो अर्जुन को इस दरजा हैरत हुई,
कि सहमा डरा और लगी कप-कपी ।
हज़ूर-ए ख़ुदावन्द में सर झुका,
वो यूँ जोड़ कर हाथ कहने लगा ।।

शब्दार्थ –ततः–तब; सः–वह; विस्मयाविष्टः–आश्चर्ययुक्त; हृष्टरोमा–पुलकित हो गये हैं रोम जिसके; धनंजयः–अर्जुन; प्रणम्य–प्रणाम करके; शिरसा–सिर से; मस्तक–मनम पूर्वक; देवम्–देव को; कृतांजलिः–अंजलि बाँध कर, हाथ जोड़ कर; अभाषत–कहने लगा ।

हैरत–आश्चर्य; हज़ूर-ए ख़ुदावन्द–भगवान् की उपस्थिति में ।

भावार्थ –तब अर्जुन आश्चर्यचकित और रोमांचित होकर, सिर झुकाकर, हाथ जोड़ कर बोला ।

15. पश्यामि देवांस्तव देव देहे सर्वांस्तथा भूतविशेषसंघान्
ब्रह्माणमीशं कमलासनस्थमृषींश्च सर्वानुरगांश्च दिव्यान् ।।

तुम्हारे पीकर में देव भगवन्, ये देवता सब समा रहे हैं,
अनेक रंगों में जीव सारे, ग्रोह बन-बन के आ रहे हैं ।
कंवल के आसन पे आप ब्रह्मा, विराजमान हैं तुम्हारे अन्दर,
ऋषि हैं या नाग आसमानी,सब अपनी सूरत दिखा रहे हैं ।

शब्दार्थ –पश्यामि–देखता हूँ; देवान्–देवों को; तव–तेरे; देव–हे देव! देहे–शरीर में; सर्वान्–सबको; भूतविशेषसंधान्– प्राणियों के समूहों को; ब्रह्माणम्–ब्रह्मा को; ईशम्–शिव को; कमलासनस्थम्–कमल के आसन पर स्थित विष्णु को; ऋषीन्–ऋषियों को; च–और; सर्वान्–सारे; उरगान्–सर्पों को; दिव्यान्–दिव्यों को ।

पीकर–शरीर; ग्रोह–समूह; आसमानी–दिव्य ।

भावार्थ –हे देव ! मैं आपके शरीर में सब देवताओं को, नाना प्रकार के सब प्राणियों के समुदायों को कमल के आसन पर विराजमान विष्णु को महादेव को, सब ऋषियों को और दिव्य सर्पों को भी देख रहा हूँ ।

16. अनेकबाहूदरवक्त्रनेत्रं पश्यामि त्वां सर्वतोऽनन्तरूपम् ।
नान्तं न मध्यं न पुनस्तवादिं पश्यामि विश्वेश्वर विश्वरूप ।।

अनेक बाज़ू अनेक चेहरे शिकम अनेक और अनेक आँखें,
अनन्त रूपी तुम्हारे जलवे, दसों दिशाओं में छा रहे हैं ।
तुम्हारा अव्वल है और न आखिर, न दरमियाँ है कोई तुम्हारा,
यह विश्वरूपी जहाँ के मालिक, तुम्हीं में आलम समा रहे हैं ।।

शब्दार्थ –अनेकबाहूदरवक्त्रनेत्रम्–जिसके अनेक भुजाएँ, उदर (पेट) मुख, नयन (नेत्र) हैं; पश्यामि–देखता हूँ; त्वाम्–तुझको; सर्वतः–सब ओर से; अनन्तरूपम्–न अन्त होने वाले रूप वाले को; अन्तम्–अन्त को; न–नहीं; मध्यम्–मध्य को; पुनः–फिर; तब–तेरा; आदिम्–आदि को; पश्यामि–देखता हूँ; विश्वेश्वर–हे विश्व के ईश्वर; विश्वरूप–हे विश्व रूप वाले ।

शिकम–पेट; जलवे–दृश्य; अव्वल–आदि; आखिर–अन्त; दरमियाँ–मध्य; आलिम–लोक ।

भावार्थ –अनेक बाहु, अनेक उदर, अनेक मुख और अनेक नेत्रयुक्त आपको मैं देख रहा हूँ, अनन्तरूप वाले आपको मैं चारों तरफ देख रहा हूँ । हे विश्वरूप ! विश्वरूप ! आप का न तो अन्त, न मध्य और न फिर आदि ही मुझे कहीं दीख रहा है ।

17. किरीटिनं गदिनं चक्रिणं च तेजोराशिं सर्वतो दीप्तिमन्तम् ।
पश्यामि त्वां दुर्निरीक्ष्यं समन्ताद्दीप्तानलार्कद्युतिमप्रमेयम् ।।

मुकुट है पुरनूर गुरज़ भी पुरनूर, उस पे चक्कर है शोला अफ़शाँ,
चमक रहे हैं दमक रहे हैं जहाँ को भी जगमगा रहे हैं ।
हो जिस तरह आग शोला अफ़शाँ; हो जैसे सूरज कारु-ए ताबा,
वो अपनी लाइन्तहा चमक से, जहाँ को खैरा बना रहे हैं ।

शब्दार्थ –किरीटिनम्–मुकुटधारी को; गदिनम्–गदाधारी को; चक्रिणम्–चँधारी को; च–और; तेजोराशिम्–तेज के समूह वाले को; सर्वतः–सब ओर से; दीप्तिमन्तम्–प्रकाशमान; पश्यामि–देखता हूँ; त्वाम–तुझे; दुर्निरीक्ष्यम्–जिसको देख पाना कठिन है; समन्तात्–चारों ओर से; दीप्तानलार्कद्युतिम्–प्रज्वलित अग्नि और सूर्य के समान कान्ति वाले को; अप्रमेयम्–अज्ञेय को ।

पुरनूर–तेजोमय; अफ़शाँ–तेज का पुंज रूप; कारु-ए ताबाँ–चमकता-दमकता चेहरा; लाइन्तहा–अनन्त; खैरह–अत्यधिक प्रकाश ।

भावार्थ –मैं आपको मुकुट, गदा और चक्र धारण किये हुए, चारों तरफ से तेज की राशि से दीप्त होते हुए, दमकते हुए अग्नि और सूर्य की द्युति के समान देदीप्यमान, अज्ञेय रूप से युक्त को, जिसे देख पाना भी कठिन है, ऐसे आप को देख रहा हूँ ।

18. त्वमक्षरं परमं वेदितव्यं त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम् ।
त्वमव्ययः शाश्वतधर्मगोप्ता सनातनस्त्वं पुरुषो मतो मे ।।

तुम्हीं हो बरतर भी लाफ़ना भी, तुम्हीं सज़ावर-ए इल्म-ओ उरफ़ा,
तुम्हीं हो बेइख्ताम-ए मख़जून, वह जिसमें आलम समा रहे हैं ।
तुम्हीं कदीमी पुरुष हो भगवन्, पुरुष वो जिसको फ़ना नहीं है,
जो लाफ़ना धर्म है उसे भी, तुम्हारे ऐहसाँ बचा रहे हैं ।।

शब्दार्थ –त्वम्–तू; अक्षरम्–अविनाशी; परमम्–परम; वेदितव्यम्–जानने योग्य; त्वम्–तू; अस्य–इसका; विश्वस्य–सब विश्व का; परम्–परम; निधानम्–आधार, आश्रय; अव्यय–अविनाशी; शाश्वतधर्मगोप्ता–सदा धर्म की रक्षा करने हारा; सनातनः–सनातन; मतः–जान पड़ते हो; मे–मुझे ।

बरतर–श्रेष्ठ; लाफ़ना–अविनाशी; सज़ावार–योग्य; इल्म-ओ उरफाँ–ज्ञान-विज्ञान;बे-इख्ताम–परम, मख़ज़न–निधान (कोष); आलम–लोक; कदीमी–सनातन; फ़ना–नाश; लाफ़ना–शाश्वत; ऐहसाँ–कृपा ।

भावार्थ –आप ही परम ज्ञेय, अविनाशी ब्रह्म हो, आप ही इस जगत् के अन्तिम आधार हो, आप ही शाश्वत-धर्म के अविनाशी रक्षक हो, आप ही सनातन-पुरुष जान पड़ते हो ।

19. अनादिमध्यान्तमनन्तवीर्यमनन्तबाहुं शशिसूर्यनेत्रम् ।
पश्यामि त्वां दीप्तहुताशवक्त्रं स्वतेजसा विश्वमिदं तपन्तम् ।।

न इब्तदा से न इन्तहा से, न वस्त से वास्ता है तुम को,
तुम्हारे लाइन्तहा हैं बाजू, जो ज़ोर-ओ ताकत दिखा रहे हैं ।
तुम्हारी आँखें हैं चाँद-सूरज, तुम्हारा चेहरा हवन की अग्नि,
तुम्हारे जलबे हैं शोला अफ़शाँ, जो कुल जहाँ को तपा रहे हैं ।

शब्दार्थ –अनादिमध्यान्तम्–जिसका न तो आदि ही है और न ही मध्य है और न अन्त है; अनन्तवीर्यम्–जिसकी शक्ति अनंत है; अनन्तबाहुम्–जिसकी अनन्त भुजायें हैं; शशिसूर्यनेत्रम्–जिसके चन्द्र और सूर्य नेत्र हैं; पश्यामि–देखता हूँ; त्वाम्–आपको; दीप्तहुताशवक्त्रम्–दीप्त अग्नि के समान मुख वाले को; स्वतेजसा–अपने तेज से; विश्वम्–सारे संसार को; इदम्–इसको; तपन्तम्–तपाते हुए को ।

इब्तदा–आदि; इन्तहा–अन्त; वस्त–मध्य; लाइन्तहा–अनन्त; अफशाँ–तेज पुँज ।

भावार्थ –जिसका न आदि है, न मध्य है, न अन्त है, जिसकी शक्ति अनन्त है, जिसकी भुजाएँ अनन्त हैं, सूर्य-चन्द्र जिसकी आँखें हैं, जिसका मुख धधकती हुई आग के समान है, जो अपने तेज से सारे विश्व को तपा रहा है–मैं ऐसे आपको देख रहा हूँ ।

20. द्यावापृथिव्योरिदमन्तरं हि व्याप्तं त्वयैकेन दिशश्च सर्वाः ।
दृष्ट्वाद्भुतं रूपमुग्रं तवेदं लोकत्रयं प्रव्यथितं महात्मन् ।।

जमीं में जलवा,समा में जलवा और उनके अन्दर खला में जलवा,
दसों दिशाओं में ईश्वर सब, तुम्हारे जलवे समा रहे हैं ।
महात्मा है तुम्हारी सूरत, वह जिससे बरसे जलाल-ओ हयबत,
कि तीनों दुनियाँ के रहने वाले, लरज रहे थरथरा रहे हैं ।।

शब्दार्थ –द्यावापृथिव्योः–आकाश और पृथिवी के; इदम्–इस; अन्तरम्–अन्तराल (बीच) को; हि–ही; व्याप्तम्–व्याप्त किया है; त्वया–तुझ; एकेन–अकेले ने; दिशः–दिशाएँ;च–और; सर्वाः–सब; दृष्ट्वा–देखकर; अद्भुतम्–आश्चर्य युक्त; रूपम्–रूप को; उग्रम्–भयानक; तव–तेरा; इदम्–यह; लोकत्रयम्–तीनों ही लोक; प्रव्यथितम्–भयभीत हैं; महात्मन्–हे महापुरुष !

समा–आकाश; खला–अन्तरिक्ष; जलवा–दृश्य; हयबत–भय थरथराना–काँपना ।

भावार्थ –आकाश और पृथ्वी के बीच के इस अन्तराल में और सब दिशाओं में आप ही अकेले व्याप्त हो रहे हैं । हे महापुरुष ! आपके इस अद्भुत एवं भयानक रूप को देखकर सारे लोक भयभीत हैं ।

21. अमी हि त्वां सुरसंघा विशन्ति, केचिद् भीताः प्रांजलयो गृणन्ति ।
स्वस्तीत्युक्त्वा महर्षिसिद्ध-संघाः, स्तुवन्ति त्वां स्तुतिभिः पुष्कलाभिः ।।

ये देवताओं के ग़ौले सारे, तुम्हीं में सब हो रहे हैं दाख़िल,
तमाम हयबत से हाथ बाँधे, तुम्हारे गुण गुनगुना रहे हैं ।
तुम्हारी तरीफ़ पुकारते हैं, महर्षि और सिद्ध मिल कर,
तुम्हारी तारीफ़ गा रहे हैं, तुम्हारे नग़मे सुना रहे हैं ।।

शब्दार्थ –अमी–ये; हि–ही; त्वाम्–तुझको; सुरसंगाः–देवों के समुदाय; विशन्ति–प्रवेश करते हैं; केचिद्–कुछ, कई; भीताः–डरे हुए; प्रांजलयः–हाथ जोड़े हुए; गृणन्ति–गुणगान करते हैं; स्वस्ति–कल्याण हो; इति–ऐसा; उक्त्वा–कहकर; महर्षि सिद्धसंघाः–महर्षि और सिद्धों के समुदाय; स्तुवन्ति–स्तुति करते हैं; त्वाम्–तुझ को; स्तुतिभिः–स्तुतियों से; पुष्कलाभिः–बहुत अधिक, अनेक ।

ग़ौल–समूह; हयबत–भय; गुनगुना–गाना; नग़मे–गीत ।

भावार्थ –यह देखो, ये देवताओं के समूह आप में प्रवेश कर रहे हैं; कितने ही भयभीत हुए हाथ जोड़ कर आपकी प्रार्थना कर रहे हैं; महर्षि और

सिद्धों के समुदाय कल्याण हो ऐसा कह कर अनेक प्रकार के स्तोत्रों से आपकी स्तुति कर रहे हैं ।

22. रुद्रादित्या वसवो ये च साध्या विश्वेऽश्विनौ मरुतश्चोष्मपाश्च ।
गन्धर्वयक्षाऽसुरसिद्धसंघा वीक्षन्ते त्वां विस्मिताश्चैव सर्वे ।।

वो रुद्र, आदित्य और वसु सब, वो साध्य विश्वदेव अश्वान,
तमाम मबहूत हो रहे हैं, निगाह को हैरत में ला रहे हैं ।
गिरहों पितरों के और मारुत, वो यक्ष गन्धर्व राक्षस सब,
गिरहों सिद्धों के मिल मिला कर, सभी अचम्भे में आ रहे हैं ।।

शब्दार्थ –रुद्रादित्याः–रुद्र और आदित्य; वसवः–वसु; ये–जो; च–और; साध्याः–साध्यागण; विश्वे–विश्वदेव; अश्विनौ–अश्विनीकुमार; मरुतः–मरुद्गण; ऊष्मपाः–पितर लोग; गन्धर्वयक्षाऽसुरसिद्धसंघाः–गन्धर्व, यक्ष, राक्षस और सिद्ध लोगों के समुदाय; वीक्षन्ते–देखते हैं; त्वाम्–तुझे; विस्मिताः–आश्चर्य से युक्त; एव–ही; सर्वे–सारे ।

मबहूत–भयभीत ।

भावार्थ –शिव के विविध रूप आदित्यगण, वसु साध्य विश्वे देव दोनों अश्विनी कुमार मरुद्गण, पितृगण, गन्धर्व, यज्ञ, असुर और सिद्धदेव सभी आपको आश्चर्यपूर्वक देख रहे हैं ।

23. रूपं महत्ते बहुवक्त्रनेत्रं महाबाहो बहुबाहूरुपादम् ।
बहूदरं बहुदंष्ट्राकरालं दृष्ट्वा लोकाः प्रव्यथितास्तथाहम् ।।

हज़ारों चेहरे, हज़ारों आँखें, हज़ारों बाजू, हज़ारों जानू,
शिकम हज़ारों, कदम हज़ारों, बला के जिन्दां डरा रहे हैं ।
तुम्हारा बेअन्त रूप वो है, कि शहनशाह-ए ज़ोर-ओ ताकत,
मैं ख़ोफ़ से ख़ुद भी काँपता हूँ, जहाँ भी सब थरथरा रहे हैं ।।

शब्दार्थ –रूपम्–रूप; महत्–महान्; ते–तेरा; बहुवक्त्रनेत्रम्–बहुत से मुख और नयनों वाला; महाबाहो–हे महाबाहु; बहुबाहूरुपादम्–बहुत बाहु; जंघा और पाँव वाला; बहूदरम्–बहुत हैं उदर जिसके; बहुदंष्ट्राकरालम्–बहुत हैं भयंकर दाढ़ें जिसकी; दृष्ट्वा–देखकर; लोकाः–संसार; प्रव्यथिताः–काँप रहे हैं; तथा–और; अहम्–मैं ।

जानू–जांघें; शिकम–उदर; बला–बहुत बड़े ।

भावार्थ –हे महाबाहु ! आपके इस महान् अनेक मुखों और नेत्रों वाले, अनेक भुजाओं, जाँघों और पैरों वाले, अनेक उदरों वाले, अनेक दाढ़ों के कारण विकराल रूप को देखकर सारे लोक व्याकुल हो रहे हैं और मैं भी व्याकुल हो रहा हूँ ।

24. नभःस्पृशं दीप्तमनेकवर्णं, व्यात्ताननं दीप्तविशालनेत्रम् ।
दृष्ट्वा हि त्वां प्रव्यथितान्तरात्मा, धृतिं न विन्दामि शमं च विष्णो ।।

तुम्हारा यह पुरजलाल कामन,जो आसमाँ से लगा हुआ है,
अनेक रंग उसपे छा रहे हैं जो ज़ेब-ओ ज़ीनत बढ़ा रहे हैं ।
फ़राग चेहरा खुला हुआ मुँह, बड़ी-बड़ी शोलाह-बार आँखें,
न मुझ में ताकत न चैन विष्णु, ये मेरे मन को डरा रहे हैं ।।

शब्दार्थ –नभःस्पृशम्–आकाश को छूने वाले; दीप्तम्–जगमगाते हुए: अनेकवर्णम्–अनेकानेक रंग वाले; व्यात्तननम्–खुले मुख वाले; दीप्तविशालनेत्रम्–चमकाते हुए विशाल नेत्रों वाले; दृष्ट्वा–देखकर; हि–ही; त्वाम्–तुझ को; प्रव्यथितान्तरात्मा–व्यथित हो गया है आत्मा जिसका ऐसा मैं; धृतिम्–धैर्य को; विन्दामि–प्राप्त करता हूँ; शमम्–शान्ति को; च–और; विष्णो–हे कृष्ण ।

पुर जलाल–प्रकाशमान; कामत–फैलाओ; ज़ेब-ओ ज़ीनत–शान; फ़राग–विशाल; शोलाह-बार–चमकते हुए ।

भावार्थ –आकाश तक को छूने वाले, जगमगाते, रंग-बिरंगे, खुले मुख वाले, देदीप्यमान विशाल नेत्रों वाले आपके रूप को देखकर मेरा अन्तरात्मा व्याकुल हो उठा है । हे श्रीकृष्ण ! मुझे न धीरज मिल रहा है, न शान्ति मिल रही है ।

25. दंष्ट्राकरालानि च ते मुखानि दृष्ट्वैव कालानलसन्निभानि ।
दिशो न जाने न लभे च शर्म प्रसीद देवेश जगन्निवास ।।

तुम्हारी दाढें उभर रही हैं, कि आग महशर की जल रही है,
फ़ना के शोले निकल रहे हैं, जो इस जहाँ को जला रहे हैं ।
मेरा सहारा न है ठिकाना, कर्म हो मुझ पर, कर्म हो मुझ पर,
तुम्हारे साय में सारे आलम, सरों को अपने छिपा रहे हैं ।।

शब्दार्थ –दंष्टाकरालानि–विकराल जबड़ों वाले; च–और; ते–तेरे; मुखानि–मुखों को; दृष्ट्वा–देखकर; एव–ही; कालानलसन्निभानि–प्रलय काल की अग्नि के समान; दिशः–दिशाओं को; जाने–जानता हूँ; लभे–प्राप्त करता हूँ; च–और; शर्म–सुख को; प्रसीद–प्रसन्न हो; देवेश–हे देवों के स्वामिन्! जगन्निवास–हे जगत् के निवास-स्थान हुए-हुए।

महशर–प्रलय; फ़ना–काल अग्नि; कर्म–दया।

भावार्थ –जब मैं प्रलय काल की अग्नि की लपटों के समान विकराल दाढ़ों वाले आपके मुखों को देखता हूँ, तब मुझे न दिशाएँ सूध पड़ती हैं, न किसी प्रकार की चैन पड़ती है। हे देवेश! हे जगन्निवास, आप मुझ पर प्रसन्न हो।

26. अमी च त्वां धृतराष्ट्रस्य पुत्राः सर्वे सहैवाऽवनिपालसंघै।
भीष्मो द्रोणः सूतपुत्रस्तथासौ सहास्मदीयैरपि योधमुख्यैः।।

वो सारे धृतराष्ट्र के बेटे और उनके साथी जहाँ के राजा,
पितामह भीष्म, द्रोणाचार्य, वो करण रथ-बाँ आ रहे हैं।
हमारी जानब के ऊँचे अफ़सर, सिपाहसालार नाम वाले,
तुम्हारे कालिब में आ रहे हैं, तुम्हारे तन में समा रहे हैं।।

शब्दार्थ –अमी–ये; च–और; त्वाम्–तुझको; धृतराष्ट्रस्य–धृतराष्ट्र के; पुत्राः–पुत्र; सर्वे–सब; सह–साथ; एव–ही; अवनिपालसंघैः–राजाओं के समूह; द्रोणः–द्रोणाचार्य; सूतपुत्रः–कर्ण; असौ–यह; सह–साथ; अस्मदीयैः–हमारे; अपि–भी; योधमुख्यैः–मुख्य योद्धा।

जानब–ओर; काबिल–शरीर।

भावार्थ –यह देखो, राजाओं के सब संघों के सहित धृतराष्ट्र के ये पुत्र, भीष्म, द्रोण और वह सूतपुत्र कर्ण, हमारी ओर के भी मुख्य-मुख्य योद्धाओं के साथ आपके विकराल मुँह में प्रवेश कर रहे हैं।

27. वक्त्राणि ते त्वरमाणा विशन्ति दंष्ट्राकरालानि भयानकानि।।
केचिद् विलग्ना दशनान्तरेषु संदृश्यन्ते चूर्णितैरुत्तमांगैः।।

तुम्हारे ख़ूँख्वार, मुँह के अन्दर, हैं सफ़-बा-सफ़ होलनाक दाढ़ें,
मैं देखता हूँ कि ऐहल-ए आलम, सब अपनी हस्ती मिटा रहे हैं ।
पहुँच के जबड़ों की चक्कियों में,सर उनके पिस कर हुए हैं चूरन,
ख़ला में दाँतों के उनमें अक्सर, फँसे हुए लड़खड़ा रहे हैं ।।

शब्दार्थ –वक्त्राणि–मुखों को; ते–तेरे; त्वरमाणाः–तेजी से, धड़ाधड़; विशन्ति–प्रवेश कर रहे हैं; दंष्ट्राकरालानि–विकराल दाढ़ों वाले; भयानकानि–भयावह; केचिद्–कुछ; विलग्नाः–लगे हुए; दशनान्तरेषु–दाँतों के बीच में; संदृष्यन्ते–दीखते हैं; चूर्णितैः–चूर-चूर हुई; उत्तमांगैः–खोपड़ियों से ।

खूँख्वार–विकराल; सफ़-वा-सफ़–पंक्तियों की पंक्तियाँ; होलनाक–भयानक; ऐहल-ए आलम–संसारी जीव; हस्ती–शरीर (अस्तित्व); ख़ला–अन्तराल ।

भावार्थ –आप की भयानक विकराल दाढ़ों वाले भयंकर मुखों में धड़ाधड़ घुसे जा रहे हैं, कुछ उन दाँतों के बीच में फँसे दीख रहे हैं, उनकी खोपड़ियाँ पिस कर चूर-चूर हो गई हैं ।

28. यथा नदीनां बहवोऽम्बुवेगाः समुद्रमेवाभिमुखा द्रवन्ति ।
तथा तवामी नरलोकवीरा विशन्ति वक्त्राण्यभिविज्वलन्ति ।।

दहन तुम्हारे चमक रहे हैं, और उसमें यूँ कोंदते हैं शोले,
जहाँ के सब शूरवीर खुद को, इन्हीं के अन्दर गिरा रहे हैं ।
वो इस तरह जा रहे हैं सारे, कि जैसे नदियों के तेज़ धारे,
किसी समुन्द्र के मुँह के अन्दर, सब अपनी हस्ती मिटा रहे हैं ।।

शब्दार्थ –यथा–जैसे; नदीनाम्–नदियों के; बहवः–अनेक; अम्बुवेगाः–जल की तरंगे; समुद्रम्–समुद्र को; एव–ही; अभिमुखाः–ओर; द्रवन्ति–दौड़ते हैं; तथा–उसी प्रकार; तव–और; अमी–ये; नरलोकवीराः–नर-लोक के वीर; वक्त्राणि–मुखों को; अभिविज्वलन्ति–प्रज्वलित हो रहे हैं ।

दहन–मुँह; शोले–ज्वाला ।

भावार्थ –जिस प्रकार नदियों के अनेक वेगवान् प्रवाह सागर की ओर दौड़ते जाते हैं, उसी प्रकार नर-लोक के ये वीर-योद्धा आपके लपटें उगलते हुए मुखों में प्रविष्ट कर रहे हैं ।

29. यथा प्रदीप्तं ज्वलनं पतंगा विशन्ति नाशाय समृद्धवेगाः ।
तथैव नाशाय विशन्ति लोकास्तवापि वक्त्राणि समृद्धवेगाः ।।

दहन के शोलों में कूदते हैं, ये तेज़ रफ़्तार लोग सारे,
फ़िदा सभी तुम पे हो रहे हैं, ये मौत के मुँह में जा रहे हैं ।
नहीं ये इन्सा ये हैं ये पतंगे, जो इश्क़-ओ मस्ती में वा-लहाना ।
अज़ल के शोलों पे उड़ रहे हैं, फ़ना से जो लौ लगा रहे हैं ।।

शब्दार्थ –यथा–जैसे; प्रदीप्तम्–जलती हुई; ज्वलनम्–आग में; पतंगा–पतंगे; विशन्ति–घुसते हैं; नाशाय–अपने विनाश के लिये; समृद्धवेगाः–बड़े वेगवाले; तथा–वैसे; एव–ही; विशन्ति–प्रवेश करते हैं; लोकाः–लोग, जनसमुदाय; तव–तेरे; अपि–भी; वक्त्राणि–मुखों को; समृद्धवेगाः–बढ़े हुए वेग वाले ।
दहन–मुख; रफ़्तार–गति; फ़िदा–न्यौछावर; इश्क-ओ मस्ती–अलौकिक आनन्द; वा-लहाना–झूमते हुए; अज़ल–काल; फ़ना–नाश ।

भावार्थ –जिस प्रकार पतंगे बड़े वेग से अपने विनाश के लिये जलती हुई अग्नि पर झपटते हुए आते हैं, उसी प्रकार अपने विनाश के लिये ये लोग बड़े वेग से आपके मुखों में घुसे जा रहे हैं ।

30. लेलिह्यसे ग्रसमानः समन्ताल्लोकान्समग्रान्वदनैर्ज्वलद्भिः ।
तेजोभिरापूर्य जगत्समग्रं भासस्तवोग्राः प्रतपन्ति विष्णो ।।

मज़े से लब अपने चाटते हो, तुम इक जहाँ को लुकमा बना रहे हैं,
ज़बाँ से शोले निकल रहे हैं, हर इक को लुकमा बना रहे हैं ।
तुम्हारी ताब-ओ तपश से विष्णु, तमाम आकाश है दहकता,
तुम्हारी किरणों के तेज़ जलबे, ज़माना भर को जला रहे हैं ।।

शब्दार्थ –लेलिह्यसे–जीभ से चाट रहे हैं; ग्रसमानः–ग्रसते हुए; समन्तात्–चारों ओर से; लोकान्–लोकों को; समग्रान्–सारे; वदनैः–मुखों से; ज्वलद्भि–जलते हुए; तेजोभिः–तेजों से; आपूर्य–भरकर; समग्रम्–सारे; भासः–आभा, प्रकाश; तव–तेरी; उग्राः–उग्र; प्रतपन्ति–तपाती हैं; विष्णो–हे कृष्ण ।

लुकमा–ग्रास; ताब-ओ तपश–उग्र कान्ति ।

भावार्थ –आप अपने धधकते हुए मुखों से, सब दिशाओं से, सब लोकों को निगलते हुए जीव चाट रहे हैं । हे श्रीकृष्ण ! आपका उग्र प्रकाश सारे संसार को तेज से भरपूर कर रहा है और उसे तपा रहा है ।

31. आख्याहि मे को भवानुग्ररूपो नमोऽस्तु ते देववर प्रसीद ।
विज्ञातुमिच्छामि भवन्तमाद्यं न हि प्रजानामि तब प्रवृत्तिम् ।।

हो देवताओं के देवता तुम, तुम्हें नमस्कार कुछ बता दो,
तुम्हारी इस पुर-जलाल सूरत में, किसके जलवे समा रहे हैं ।
तुम्हारी हस्ती अज़ल से पहले, बताओ मुझको, कि कौन हो तुम,
ये कैसे असरार हैं तुम्हारे, जो मुझ को हैराँ बना रहे हैं ।।

शब्दार्थ –आख्याहि–बता; मे–मुझ को; कः–कौन; भवान्–आप; उग्ररूपः–उग्र रूप वाले; नमः–नमस्ते; अस्तु–हो; ते–तुझे; देववर–देवों में श्रेष्ठ; प्रसीद–प्रसन्न हो; विज्ञातुम्–जानने की; इच्छामि–इच्छुक हूँ; भवन्तम्–आपको; आद्यम्–आदि; हि–ही; प्रजानामि–जानता हूँ; तव–तेरी; प्रवृत्तिम्–प्रयोजन को ।
जलाल–उग्र रूप; अजल–आदि; असरार–भेद; हैराँ–आश्चर्यान्वित ।

भावार्थ –आप मुझे बतलाइये कि आप उग्ररूप वाले कौन हैं ? हे देवताओं में श्रेष्ठ ! आपको नमस्कार करता हूँ । कृपया मुझ पर प्रसन्न हो । आप आदि भगवान् हैं । मैं आपको जानना चाहता हूँ, क्योंकि मैं नहीं जान पा रहा हूँ कि आपका प्रयोजन क्या है ।

32. कालोऽस्मि लोकक्षयकृत्प्रवृद्धो लोकान्समाहर्तुमिह प्रवृत्तः ।
ऋतेऽपि त्वां न भविष्यन्ति सर्वे येऽवस्थिताः प्रत्यनीकेषु योधाः ।।

क़ज़ा हूँ मैं, क़ज़ा हूँ मैं, कि दरपए फ़ना हूँ मैं,
जहाँ को हस्त-ओ बूद को, मिटाने आ रहा हूँ मैं ।
ये शूरवीर लश्करी, जो तुल रहे हैं जंग पर,
तू हो न हो ये सब-के-सब, हलाक कर चुका हूँ मैं ।।

शब्दार्थ –कालः–काल; अस्मि–हूँ; लोकक्षयकृत्–लोकों के क्षय करने वाला; प्रवृद्धः–बढ़ा हुआ; लोकान्–लोकों को; समाहर्तुम्–संहार करने के

लिए; इह–यहाँ; प्रवृत्त–प्रवृत्त हो रहा हूँ; ऋते–बिना; अपि–भी; त्वाम्–तुझ को; भविष्यन्ति–होंगे; सर्वे–सब; ये–जो; अवस्थिताः–ठहरे हुए हैं; प्रत्यनीकेषु–शत्रु की सेनाओं में ।

क़ज़ा–महाकाल; दरपए–दृढ़तापूर्वक; फ़ना–काल; हस्त-ओ बूद–जीवों को; लशकरी–सेनापति; हलाक–नाश करना ।

भावार्थ –मैं लोकों का नाश कर देने वाला काल हूँ; मैं सारे लोगों का विनाश करने के लिये आया हूँ । तुम्हारे पाण्डवों के अतिरिक्त दोनों पक्षों के योद्धा मारे जायेंगे ।

33. तस्मात्त्वमुत्तिष्ठ यशो लभस्व जित्वा शत्रून्भुंक्ष्व राज्यं समृद्धम् ।
मयैवैते निहताः पूर्वमेव निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन् ।।

तू अर्जुन उठ हो नेक नाम, दुश्मनों को घेर कर,
ब-ज़ोर छीन ताज-ओ तख़्त, हम-सरो को ज़ेर कर ।
ये मर चुके हैं, ये मर चुके, फ़ना मैं इनको कर चुका,
तू बायें हाथ वाले उठ, वसीला बन न देर कर ।।

शब्दार्थ –तस्मात्–उस कारण से; त्वम्–तू; उत्तिष्ठ–उठ; यशः–यश को; लभस्व–प्राप्त कर; जित्वा–जीत कर; शत्रून्–शत्रुओं को; भुङ्क्ष्व–भोग कर; राज्यम्–राज्य को; समृद्धम्–धन-धान्य से सम्पन्न; मया–मेरे द्वारा; एव–ही; एते–ये; निहताः–मारे हुए हैं; पूर्वम्–पहले; एव–ही; निमित्तमात्रम्–केवल निमित्त ही; भव–बन जा; सव्यसाचिन्–हे अर्जुन ।

नेकनाम–सम्मानित; ब-ज़ोर–शक्तिपूर्वक; हम-सरों–सम-व्यस्कों; ज़ेर–अधीन; वसीला–निमित्तमात्र ।

भावार्थ –इसलिये तू उठ खड़ा हो, यश का लाभ ले ले, शत्रुओं को जीतकर समृद्धिपूर्ण राज्य का उपभोग कर । ये सब तो मेरे द्वारा ही मारे जा चुके हैं, हे अर्जुन ! तू तो केवल निमित्त-मात्र बन जा ।

34. द्रोणं च भीष्मं च जयद्रथं च कर्णं तथान्यानपि योधवीरान् ।
मयाहतांस्त्वं जहि मा व्यथिष्ठा युष्यस्व जेतासि रणे सपत्नान् ।।

मैं कर्ण, भीष्म और दरूँ, इन्हें हलाक कर चुका,
जयद्रथ और जंग-जू, समझ हर इक मर चुका ।

तू जीत जायेगा न डर, अदू से अपने जंग कर,
तू मार इन्हें ये मर चुके, सफ़र जहाँ से कर चुके।।

शब्दार्थ –द्रोणम्–द्रोण को; भीष्मम्–भीष्म को; जयद्रथम्–जयद्रथ को; कर्णम्–कर्ण को; अन्यान्–दूसरों को; अपि–भी; योधवीरान्–सैनिकों को; मया–मेरे द्वारा; हतान्–मारे गये हुओं को; त्वम्–तू; जहि–मार; मा–मत; व्यथिष्ठाः–घबड़ा, दुःख मान; युध्यस्व–लड़; जेतासि–विजयी होगा; रणे–युद्ध में; सपत्नान्–शत्रुओं को।
अदू–शत्रु।

भावार्थ –द्रोण, भीष्म, जयद्रथ, कर्ण तथा ऐसे ही अन्यान्य वीर योद्धा जो मेरे द्वारा पहले ही मार डाले गये हैं–उन मरों हुओं को तू मार डाल, घबड़ा मत, युद्ध कर, तू युद्ध में शत्रुओं को जीतेगा। अतः युद्धकर।

35. एतच्छ्रुत्वा वचनं केशवस्य कृतांजलिर्वेपमानः किरीटी।
नमस्कृत्वा भूय एवाह कृष्णं सगद्गदं भीतभीतः प्रणम्य।।

सुनी जब यह गुफ़्तार भगवान् की,
लगी साहिब-ए ताज़ को कप-कपी।
ज़बाँ लड़खड़ाई गला रुक गया,
झुका जोड़ कर हाथ कहने लगा।।

शब्दार्थ –एतत्–यह; श्रुत्वा–सुनकर; वचनम्–वचन को; केशवस्य–श्रीकृष्ण के; कृतांजलिः–हाथ जोड़ कर; वेपमानः–काँपते हुए; किरीटी–अर्जुन; नमस्कृत्वा–नमस्कार करके; भूयः–फिर; एव–ही; आह–कहता है; कृष्णम्–कृष्ण को; सगद्गदम्–रुंधे हुए कण्ठ से; भीतभीतः–भयभीत; प्रणम्य–प्रणाम करके।
गुफ़्तार–वचन; साहिब-ए ताज–मुकुटधारी।

भावार्थ –श्री कृष्ण के ये वचन सुनकर काँपते हुए, भय से भीत हुए मुकुटधारी अर्जुन ने हाथ जोड़ कर कृष्ण को नमस्कार किया और रुंधे हुए कण्ठ से श्रीकृष्ण को इस प्रकार कहा।

36. स्थाने हृषीकेश तव प्रकीर्त्या जगत्प्रहृष्यत्यनुरज्यते च।
रक्षांसि भीतानि दिशो द्रवन्ति सर्वे नमस्यन्ति च सिद्धसंघाः।।

ज़माना करता है ऐ हृषीकेश ! जिसकी हमद-ओ सना तुम्हीं हो,
खुशी से गुण गाते हैं तुम्हारे, कि सबके परमात्मा तुम्हीं हो ।
तुम्हीं से डर-डर के राक्षस सब, दसों दिशाओं में भागते हैं,
करें नमस्कार सिद्ध मिल कर, जिसे वो सब के खुदा तुम्हीं हो ।।

शब्दार्थ –स्थाने–यथा स्थान; हृषीकेश–हे इन्द्रियों के स्वामी श्रीकृष्ण; तव–तेरे; प्रकीर्त्या–कीर्ति; जगत्–संसार; प्रहृष्यति–हर्ष को पाता है; अनुरज्यते–अनुराग करता है; च–और; रक्षांसि–राक्षस गण; भीतानि–भयभीत हुए; दिशः–दिशाओं में; द्रवन्ति–भाग जाते हैं; सर्वे–सब; नमस्यन्ति–नमस्कार करते हैं; सिद्धसंघा–सिद्ध पुरुष । हमद-ओ सना–स्तुति ।

भावार्थ –हे श्री कृष्ण ! आपके नाम के श्रवण से संसार हर्षित होता है और सभी लोग आपके प्रति अनुरक्त होते हैं । यद्यपि सिद्धपुरुष आपको नमस्कार करते हैं परन्तु राक्षस भयभीत हैं और इधर-उधर भाग रहे हैं ।

37. कस्माच्च ते न नमेरन्महात्मन् गरीयसे ब्रह्मणोऽप्यादिकर्त्रे ।
अनन्त देवेश जगन्निवास त्वमक्षरं सदसत्तत्परं यत् ।।

बड़े हो ब्रह्म से मरतब में, कि खुद हो ब्रह्म के तुम हो मूजब,
करें नमस्कार क्यों न सारे, कि जात-ए लाइन्तहा तुम्हीं हो ।
तुम्हीं हो सत् भी तुम्हीं असत् भी, तुम्हीं हो तत्त्व भी तुम्हीं हो अक्षर,
जगत्-निवास और महात्मा हो, देवताओं के देवता तुम्हीं हो ।।

शब्दार्थ –कस्मात्–क्यों; च–और; ते–वे; नमेरन्–नमस्कार को झुकें; महात्मन्–हे महात्मन्; गरीयसे–महान्; ब्रह्मणः–ब्रह्मा के; अपि–भी; आदिकर्त्रे–आदि कर्ता के लिए; अनन्त–हे अन्तरहित ! देवेश–हे देवेश ! जगन्निवास–संसार के निवास (आश्रय); त्वम्–तू; अक्षरम्–अविनाशी; सद्–सत्; असद्–असत्; तत्परम्–दिव्य; यत्–क्योंकि ।

मरतबे–पद; मूजब–रचयिता; लाइन्तहा–अनन्त; अक्षर–अविनाशी ।

भावार्थ –हे महात्मन्! वे आप के सामने क्यों न नमें? आप तो आदि स्रष्टा ब्रह्मा से भी महान् हैं। हे अनन्त! हे देवताओं के भी स्वामी! हे जगत् के आश्रय! आप अविनश्वर हैं, आप सत् भी हैं, असत् भी हैं, सत-असत् से जो परे हैं वह भी आप ही हैं।

38 त्वमादिदेवः पुरुषः पुराणस्त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम्।
वेत्तासि वेद्यं च परं च धाम त्वया ततं विश्वमनन्तरूप।।

तुम्हीं हो बरतर ख़ुदा-ए अव्वल, पुरुष कदीमी पनाह-ए आलम,
तुम्हीं सज़ावार-ए इल्म-ओ उरफाँ, अलोम-ए राज आशना तुम्हीं हो।
तुम्हीं से फैला जहान सारा, तुम्हीं हो सबका मकाम-ए अफ़जल,
है जिससे भरपूर सारो दुनियाँ, अनन्त रूपी ख़ुदा तुम्हीं हो।।

शब्दार्थ –त्वम्–आप; आदिदेवः–आदि देव; पुराणः–पुरातन; त्वम्–आप; अस्य–इस; विश्वस्य–संसार के; परम्–परम; निधानम्–आधार; वेत्ता–ज्ञाता; असि–हो; वेद्यम्–जानने योग्य; च–और; धाम–धाम, लोक; त्वया–आप से; ततम्–व्याप्त; विश्वम्–यह संसार; अनन्तरूप–हे अनन्त रूप वाले।

बरतर–आदिदेव; कदीमी–सनातन; पनाह-ए उरफ़ाँ–जगत् के आश्रय; सज़ावार–जानने योग्य; इल्म-ओ उरफाँ–ज्ञान-विज्ञान; अलीम-ए राज़–भेद को जानने वाला; मकाम-ए अफ़ज़ल–परम।

भावार्थ –आप देवताओं में आदि-देव हैं, आप पुरातन-पुरुष हैं, आप इस विश्व के परम आधार हैं, आप ही ज्ञाता हैं, आप ही ज्ञेय हैं, आप ही परम धाम हैं, हे अनन्त! यह सम्पूर्ण दृश्य जगत् आपसे व्याप्त है।

39. वायुर्यमोऽग्निर्वरुणः शशांक प्रजापतिस्त्वं प्रपितामहश्च।
नमो नमस्तेऽस्तु सहस्रकृत्वः पुनश्च भूयोऽपि नमो नमस्ते।।

तुम्हीं जहाँ के हो बाप-दादा, तुम्हीं हो ब्रह्मा तुम्ही हो यम भी,
तुम्हीं वरुण हो हो तुम्हीं अग्नि तुम्हीं चाँद और हवा तुम्हीं हो।
तुम्हें नमस्कार फिर नमस्कार, फिर नमस्कार मेरे दाता,
तुम्हें नमस्कार हो हज़ारों, ख़ुदा-ए इज़्ज़ी अला तुम्हीं हो।।

शब्दार्थ –यमः–नियन्ता यम; वरुणः–वरुण; शशांक–चन्द्रमा; प्रजापतिः–प्रजापति; त्वम्–आप; प्रपितामहः–परदादा; च–और;

नमः—नमस्कार; ते—तुझे; अस्तु—हो; सहस्रकृत्वः—हज़ार बार; पुनः च—और फिर; भूयः—फिर, बहुत; अपि—भी; ते—तुझे ।
ख़ुदा-ए इज्ज़ो—परम आदरणीय ।

भावार्थ —आप वायु, यम, अग्नि, वरुण, चन्द्र, प्रजापति और परदादा हैं । आपको हज़ार बार नमस्कार है, और पुनः पुनः नमस्कार है ।

40. नमः पुरस्तादथ पृष्ठतस्ते नमोऽस्तु ते सर्वत एव सर्व ।
अनन्तवीर्यामितविक्रमस्त्वं सर्वं समाप्नोषि ततोऽसि सर्वः ।।

तुम्हें नमस्कार हाज़राना, तुम्हें नमस्कार ग़ायबाना,
तुम्हें नमस्कार हर तरफ से, कि कुल में जलवा नुमा तुम्हीं हों ।
तुम्हारी कूअत को कोई हद है, न ज़ोर-ओ ताकत की इन्तहा है,
तुम्हीं से कायम है सारा आलम, नहीं कोई दूसरा तुम्हीं हो ।।

शब्दार्थ —नमः—नमस्कार; पुरस्तात्—आगे से; अथ—इस प्रकार; पृष्ठतः—पीछे से; ते—आपको; अस्तु—हो; ते—आपको; सर्वतः—सब ओर से; एव—ही; सर्व—हे सर्वात्मन्! अनन्तवीर्य—हे असीम पौरुष वाले; अमितविक्रमः—अतुल विक्रम वाले; त्वम्—आप; सर्वम्—सब कुछ; समाप्नोषि—आच्छादित करते हो; ततः—अतःएव; असि—हो; सर्वः—सब कुछ ।
हाज़राना—उपस्थिति में; ग़ायबाना—अनुपस्थिति में; जलवा-नुमा—व्याप्त; कूअत—शक्ति; इन्तहा—अन्त; कायम—स्थित; आलम—सृष्टि ।

भावार्थ —आपको आगे पीछे और चारों ओर से नमस्कार है । हे असीम शक्ति! आप अनन्त पराक्रम के स्वामी हैं । आप सर्वव्यापी हैं । अतः आप सब कुछ हैं ।

41. सखेति मत्वा प्रसभं यदुक्तं हे कृष्ण हे यादव हे सखेति ।
अजानता महिमानं तवेदं मया प्रमादात्प्रणयेन वाऽपि ।।

कभी कहा मैंने कृष्ण तुम को, कभी कहा मैंने दोस्त यादव,
मैं बे-तकल्लफ रहा समझता, कि यार आशना तुम्हीं हो ।
इसे समझ लो मेरी मुहब्बत, इसे समझ लो मेरी जहालत,
न पहले अफ़सोस मैंने समझा कि शाह-ए अरज-ओ समा तुम्हीं हो ।।

शब्दार्थ –सखा–मित्र; इति–ऐसा; मत्वा–मानकर; प्रसभम्–बलात; यद्–जो; उक्तम्–सम्बोधन किया है; हे सखे–हे मित्र; इति–ऐसा; अजानता–न जानते हुए; महिमानम्–महिमा को; तव–आपकी; इदम्–इसको; मया–मैंने; प्रमादात्–मूर्खतावश; प्रणयेन–प्रीति से; वा–अथवा; अपि–भी ।

बे-तकल्लुफ़–अनजाने में; आशना–परिचित; जहालत–अज्ञानता; अरज़-ओ समा–पृथ्वी और आकाश ।

भावार्थ –आपकी इस महिमा को न जानकर, आपको अपना सखा मानकर, हे कृष्ण, हे यादव, हे सखा– इस प्रकार जो मैंने भूल से, या प्रेम से सम्बोधन किया है ।

42. यच्चावहासार्थमसत्कृतोऽसि विहारशय्यासनभोजनेषु ।
एकोऽथवाऽप्यच्युत तत्समक्षं तत्क्षामये त्वामहमप्रमेयम् ।।

जो बैठे उठे जो खाते-पीते, जो जागे सोते जो खेलते में,
हुई हों गुस्ताख़ियाँ तो बख़्शो, कि ज़ात -ए लाइन्तहा तुम्ही हो ।
कभी अकेले कभी सभा में, कहा हो सब कुछ दिल-लगी से तुम को ।
तो पुर ख़ताकी ख़ताको बख़्शो, कि हस्ती-ए बे-ख़ता तुम्हीं हो ।।

शब्दार्थ –यत्–जो कुछ; च–और; अवहासार्थम्–हँसी के लिये; असत्कृतः–असत्कार किया, तिरस्कृत किया; असि–है; विहारशव्यासन-भोजनेषु–विहार (सैर-सपाटा), सोने, बैठने और खान-पान में; एकः–इकला; अथवा–या; अपि–भी; अच्युत–हे अच्युत कृष्ण; तत्समक्षम्–उनके समक्ष; तत्–उसको; क्षामये–मै । क्षमा माँगता हूँ; त्वाम्–तुझको; अहम्–मैं; अप्रमेयम्–अचिन्त्य ।

गुस्ताख़ियाँ–त्रुटियाँ; ज़ात-ए लाइन्तहा–अनन्त सत्ता; ख़ता–त्रुटियों से पूर्ण; हस्ती-ए बेख़ता–दोष रहित सत्ता ।

भावार्थ –और कभी खेल में, शय्या पर लेटे हुए, बैठे हुए या कभी भोजन करते समय, अकेले में या सबके बीच में, हँसी-मज़ाक में मैंने जो आपके प्रति अनादर किया है । हे अनन्तस्वरूप ! आप मेरे इन सारे अपराधों को क्षमा करें ।

43. पिताऽसि लोकस्य चराचरस्य त्वमस्य पूज्यश्य गुरुर्गरीयान्
न त्वत्समोऽस्त्यभयधिकः कुतोऽन्यो लोकत्रयेऽप्यप्रतिमप्रभाव।।

हैं जितने साबित हैं जितने सैय्यार, सब जहानों के हो पिता तुम,
तुम्हीं की शाया है सारी इज़्ज़त, कि मुरशद-ओ रहनुमा तुम्हीं हो।
नहीं तुम्हारी मिसाल कोई, किसे फ़जीलत है तुम से बढ़ कर,
न जिसकी ताकत का तीनों आलम में, है कोई दूसरा तुम्हीं हो।।

शब्दार्थ –असि–हो; लोकस्य–जगत् के; चराचरस्य–चर और अचर; त्वम्–आप; अस्य–इसके; पूज्यः–पूजनीय; च–और; गुरुः–गुरु; गरीयान–गुरुतम; त्वत्समः–आपके समान; अस्ति–है; अभ्यधिकः–आपसे अधिक; कुतः–कैसे; अन्यः–दूसरा; लोकत्रये–तीनों लोकों में; अपि–भी; अप्रतिमप्रभाव–हे अप्रतिम (अतुल) प्रभाववाले।

मुरशद-ओ रहनुमा–गुरु; मिसाल–उदाहरण; फ़जीलत–महानता; आलम–लोक।

भावार्थ –आप इस चराचर जगत् के पिता हैं, आप इस संसार के पूज्य और गुरु के भी गुरु हैं। जब आपके समान कोई नहीं है, तब आपसे अधिक तो कोई हो ही कैसे सकता है? तीनों लोकों में आपसे बढ़कर कोई कैसे हो सकता है?

44. तस्मात्प्रणम्य प्रणिधाय कायं प्रसादये त्वामहमीशमीड्यम्।
पितेव पुत्रस्य सखेव सख्युः प्रियः प्रियायार्हसि देव सोढुम।।

इसलिये सजदा कर रहा है, तुम्हारे आगे झुका के तन को,
कि जिसको ज़ेबा है सजदा करना, फ़क़त मेरे किबरिया तुम्हीं हो।
पिदर नवाज़िस करे पिसर पर, सजन-सजन पर पिया-पिया पर,
दया करो मुझपे भगवन्! कि बहर-ए लुत्फ-ओ अता तुम्हीं हो।।

शब्दार्थ –तस्मात्–इसलिये; प्रणम्य–प्रणाम करके; प्रणिधाय–साष्टांग झुकाकर; कायम्–शरीर को; प्रसादये–प्रसन्न कराता हूँ; त्वाम्–आपको; अहम्–मैं; ईशम्–ईश्वर को; ईडयम्–स्तुति करने योग्य को; इव–समान; पुत्रस्य–पुत्र का; इव–समान; सख्युः–मित्र का; प्रियः–प्रिय; प्रियाय–अपने प्रिय के लिये; अर्हसि–योग्य हो;

देव–हे देव; सोढुम्–सहन करने के लिए ।

ज़ेबा–योग्य; फ़कत–केवलमात्र; किबरिया–स्वामी; पिदर–पिता; नवाज़िश–कृपा; पिसर–पुत्र; लुत्फ़-ओ अता–दया-सिन्धु ।

भावार्थ –इसलिये प्रणाम करके और अपनी काया को आपके सम्मुख साष्टांग झुका कर, मैं आप आराधनीय प्रभु से प्रसन्न होने की प्रार्थना करता हूँ । हे देव ! जिस प्रकार पिता अपने पुत्र के, मित्र अपने मित्र के व्यवहार को सहन करता है, वैसे आप मेरे प्रिय होने के कारण मेरे कल्याण के लिये सहन करेंगे ।

45. अदृष्टपूर्वं हृषितोऽस्मि दृष्ट्वा भयेन च प्रव्यथितंमनो मे ।
तदेव मे दर्शय देव रूपं प्रसीद देवेश जगन्निवास ।।

तुम्हारा मैंने वो रूप देखा, न जिसको देखा था मैंने पहले,
मैं खुश भी हूँऔर ग़मज़दा भी, मकाम-ए बीम-ओ रज़ा तुम्हीं हो ।
मुझे दिखा दो मुझे दिखा दो, वही वो पहली सी अपनी सूरत,
जगत् निवास अब दया हो मुझ पर, कि देवों के देवता तुम्हीं हो ।।

शब्दार्थ –अदृष्टपूर्वम्–पहले न देखा हुआ; हृषितः–हर्ष से विभोर, रोमांचित; अस्मि–हूँ; दृष्ट्वा–देखकर; भयेन–भय से; च–और; प्रव्यथितम्–व्याकुल; मनः–मन; मे–मेरा; तद्–उसको; एव–ही; तद्–उसको; एव–ही; दर्शय–दिखा; देव–हे भगवन्; रूपम्–रूप को; प्रसीद–प्रसन्न हो; देवेश–हे देवाधि-देव; जगन्निवास–सारे संसार के निवासस्थान हुए-हुए ।

ग़मज़दा–भयभीत; मकाम–स्थान; बीम–भय; रज़ा–आशा ।

भावार्थ –मैं पहले न देखे हुए आपके रूप को देखकर हर्षित हो रहा हूँ, साथ ही मेरा मन भय से व्याकुल भी हो गया है । इसलिये हे देव ! मुझे वही–अपना पहले वाला रूप दिखलाइये । हे देवताओं के देवता, हे जगत् के निवास, आप मुझ पर प्रसन्न होइये ।

46. किरीटिनं गदिनं चक्रहस्तमिच्छामि त्वां द्रष्टुमहं तथैव ।
तेनैव रूपेण चतुर्भुजेन सहस्रबाहो भव विश्वमूर्ते ।।

मुकुट लगाया हो गुर्ज़ उठाया हो, हाथ में हो तुम्हारे चक्कर,
वो रूप पहला-सा देख लूँ मैं, कि देर से आशना तुम्हीं हो ।
दया करो मुझ पे फिर दिखा दो, वो मूरती चार हाथों वाली,
तुम्हारे हैं गो हज़ार बाज़ू, कि विश्वरूपी ख़ुदा तुम्हीं हो । ।

शब्दार्थ –किरीटिनम्–मुकुटधारी; गदिनम्–गदाधारी; चक्रहस्तम्–हाथ में चक्र धारण किये हुए; इच्छामि–चाहता हूँ; त्वाम्–आपको; द्रष्टुम्–देखने के लिये; अहम्–मैं; तथा–वैसे; उप–ही; तेन–उसी; एव–ही; रूपेण–रूप से; चतुर्भुजेन–चार भुजाओं वाले; सहस्रसबाहो–हे हज़ारों भुजाओं वाले; भव–हो; विश्वमूर्ते–हे विश्व रूप ।

आशना–परिचित ।

भावार्थ –मैं तुझे फिर पहले की भाँति मुकुटधारी, गदाधारी, चक्रधारी देखना चाहता हूँ, हे हज़ारों भुजाओं वाले, हे विश्वमूर्ति ! उसी अपने पहले चतुर्भुजवाले रूप से दर्शन दें ।

47. मया प्रसन्नेन तवार्जुनेदं रूपं परं दर्शितमात्मयोगात् ।
तेजोमयं विश्वमनन्तमाद्यं यन्मे त्वदन्येन न दृष्टपूर्वम् । ।

सुन अर्जुन अब मेरी दया, यह तुझ पे बिलज़रूर है,
कि मैंने अपने योग से, दिखा दिया ज़हूर है ।
न जिसको देखा आज तक, किसी ने भी तेरे सिवा,
वो अव्वली वो दायमी, यह विश्वरूपी नूर है । ।

शब्दार्थ –मया–मैंने; प्रसन्नेन–प्रसन्न हुए; तव–तुझे; इदम्–यह; रूपम्–रूप; परम्–उत्कृष्ट; दर्शितम्–दिखाता है; आत्मयोगात्–आत्म-सामर्थ्य के कारण; तेजोमयम्–तेज से युक्त; विश्वम्–विश्व, सकल; अनन्तम्–न अन्तवाला; आद्यम्–आदि में होने वाला; यत्–जो; मे–मेरा; त्वद्–तुझ से; अन्येन–दूसरे ने; दृष्टपूर्वम्–किसी ने पहले नहीं देखा ।

बिलज़रूर–निःसन्देह; ज़हूर–दर्शन; अवली–सर्वप्रथम; दायमी–नित्य ।

भावार्थ –हे अर्जुन! मैंने प्रसन्न होकर अपने योग-सामर्थ्य से अपना यह तेजोमय, विश्वव्यापी, अनन्त, परम आदि रूप दिखाया है। मेरा रूप तेरे अतिरिक्त पहले किसी ने नहीं देखा।

48. न वेदयज्ञाध्ययननैर्न दानैर्न च क्रियाभिर्न तपोभिरुग्रैः।
एवंरूपः शक्य अहं नृलोके द्रष्टुं त्वदन्येन कुरुप्रवीर।।

कुरु के खानदान में, मिली है तुझ को सरवरी,
दिखाया तुझ को अपना रूप, है यह बन्दा परवरी।
न वेद जप से मिल सके, न दान तप से मिल सके,
न यज्ञ न करम-काण्ड से, दिखाई दे सके हरी।।

शब्दार्थ –वेदयज्ञाध्ययनैः–वेदाभ्यास; दानैः–दान करने से; च–और; क्रियाभिः–कर्मकाण्ड की क्रियाओं द्वारा; तपोभिः–तपों से; उग्रैः–उग्र, कठिन; एवंरूपः–इस प्रकार के रूप वाला; शक्यः–सम्भव है; अहम्–मैं; नृलोके–मनुष्य-लोक में; द्रष्टुम्–देखने के लिये; त्वत्–तुम्हारे अतिरिक्त अन्येन–अतिरिक्त, दूसरे से; कुरुप्रवीर–हे कुरुओं में श्रेष्ठ वीर।
सरवरी–महानता; परवरी–कृपा।

भावार्थ –हे अर्जुन! इस मानुष लोक में तेरे अतिरिक्त अन्य किसी भी व्यक्ति से मैं इस रूप में नहीं देखा जा सका–न वेदों के अभ्यास द्वारा, न यज्ञों द्वारा, न शास्त्रों के अध्ययन द्वारा, न दान के द्वारा, न कर्मकाण्ड की क्रियाओं द्वारा, न उग्र तपों द्वारा इस रूप को देखा जा सकता है।

49. मा ते व्यथा मा,च विमूढभावो दृष्ट्वा रूपं घोरमीदृंगममेदम्।
व्यपेतभीः प्रीतमनाःपुनस्त्वं तदेव मे रूपमिदं प्रपश्य।।

हिरास-ओ खौफ़ छोड़ दे न ज़ार हो न ज़ार हो,
न हौलनाक रूप से, मेरे तू बेकरार हो।
ले मेरी शक्ल देख ले, तू जिससे आशना भी है,
यह बीम-ओ ख़ौफ़ दूर कर, खुशी से हम कनार हो।।

शब्दार्थ –मा–मत; ते–तुझको; व्यथा–दुःख हो; च–और; विमूढभावः–किंकर्त्तव्यमूढता; दृष्ट्वा–देखकर; रूपम्–रूप को; घोरम्–

भयावह; ईदृक्–ऐसा; मम–मेरा; इदम्–यह; व्यपेतभीः–भय रहित; प्रीतमनाः–प्रसन्न मन वाला; पुनः–फिर; त्वम्–तू; तद्–वह; एव–ही; मे–मेरे; रूपम्–रूप को; इदम्–इस; प्रपश्य–अच्छी प्रकार से देख ।

हिरास–निराशा; ख़ौफ़–भय; ज़ार–घबराना; होलनाक–विशाल; बेकरार–व्याकुल; आशना–परिचित; बीम-ओ खौफ़–व्याकुलता और भय; हम-कनार–प्राप्त होना ।

भावार्थ – मेरे इस विकराल रूप को देखकर तू घबरा मत और किंकर्तव्यविमूढ़ भी मत हो । भय को त्याग कर, प्रेम से मन को भरपूर करके तू फिर मेरे उसी रूप को देख ।

50. इत्यर्जुनं वासुदेवस्तथोक्त्वा स्वकं रूपं दर्शयामास भूयः ।
आश्वासयामास च भीतमेनं भूत्वा पुनः सौम्यवपुर्महात्मा ।।

यह कह कर महा आत्मा ने वही,
दिखा दी वही पहली सूरत हुसीं ।
गया ख़ौफ़ सब आन की आन में,
तसल्ली से जान आ गई जान में ।

शब्दार्थ – इति–इसप्रकार; अर्जुनम्–अर्जुन को; वासुदेवः–श्रीकृष्ण; तथा–वैसे; उक्त्वा–कहकर; स्वकम्–अपने; रूपम्–रूप को; दर्शयामास–दिखाया; भूयः–फिर; आश्वासयामास–धैर्य बंधाया; च–और; भीतम्–डरे हुए को; एनम्–इसे; भूत्वा–होकर; पुनः–फिर; सौम्यवपुः–सौम्य शरीर वाला ।

हुसीं–प्रिय; आन–तत्काल ।

भावार्थ – श्रीकृष्ण ने अर्जुन से यह कहकर उसे फिर अपना रूप दिखाया । उस महात्मा ने फिर अपना सौम्य रूप धारण करके भयभीत अर्जुन को धैर्य बँधाया ।

51. दृष्ट्वेदं मानुषं रूपं तव सौम्यं जनार्दन ।
इदानीमस्मि संवृत्तः सचेताः प्रकृतिं गतः ।।

जो अर्जुन ने देखा तो भगवान् की,
वही पहली सूरत थी इन्सान की ।
कहा अब मेरा दिल ठिकाने लगा,
मुझे होश भगवान् आने लगा ।।

शब्दार्थ –दृष्ट्वा–देखकर; इदम्–इस; मानुषम्–मानवीय; रूपम्–रूप को; तव–तेरा; सौम्यम्–अत्यंत सुन्दर; जनार्दन–हे कृष्ण; इदानीम्–अब; अस्मि–हूँ; संवृत्तः–हो गया; सचेताः–होश-हवास वाला; प्रकृतिम–स्वाभाविक मनोदशा को; गतः–प्राप्त हो गया हूँ ।

भावार्थ –श्रीकृष्ण ! आपके इस सौम्य मानवीय रूप को देखकर अब मेरे होश-हवास ठिकाने आ गये हैं और मैं अपनी स्वाभाविक मनोदशा में आ गया हूँ ।

52. सुदुर्दर्शमिदं रूपं दृष्टवानसि यन्मम ।
देवा अप्यस्य रूपस्य नित्यं दर्शनकांक्षिणः ।।

फिर अर्जुन से भगवान कहने लगे,
कि तूने जो अब मेरे दर्शन किये ।
सदा देवताओं को अरमाँ रहा,
यह दर्शन कहाँ उनको हासिल हुआ ।।

शब्दार्थ –सुदुर्दर्शमिदं–कठिनता से देखने योग्य; इदम्–इस; रूपम्–रूप को; दृष्टवान्–देखा; असि–है; यत्–जिस; मम–मेरा; देवाः–देव; अपि–भी; अस्य–इस; रूपस्य–रूप का; नित्यम्–शाश्वत ही; दर्शनकांक्षिणः–दर्शनाभिलाषी ।
अरमाँ–तीव्र इच्छा ।

भावार्थ –तूने मेरे जिस रूप को देखा है उसके दर्शन कर पाना बहुत कठिन है । देवता भी इस रूप के दर्शन के लिये सदा तरसते रहते हैं ।

53. नाहं वेदैर्न तपसा न दानेन न चेज्यया ।
शक्य एवंविधो द्रष्टुं दृष्टवानसि मां यथा ।।

मुझे तूने देखा है जिस तौर से,
यही तौर मुमकिन नहीं और से ।
यह दीदार यज्ञ से न तप से मिले,
न दान और न वेदों के जप से मिले ।।

शब्दार्थ –अहम्–मैं; वेदैः–वेदों के अध्ययन से; तपसा–तप से; दानेन–दान से; च–और; इज्यया–यज्ञ से; शक्यः–सम्भव; एवंविधः–इस प्रकार का; द्रष्टुम्–देखने के लिये; दृष्टवान्–देख लिया; असि–है; माम्–मुझको; यथा–जैसे ।
तौर–रूप; दीदार–दर्शन ।

भावार्थ –तूने मुझे जिस रूप में देखा है, उसे न वेदों से, न तप से, न दान से, न यज्ञ से देखा जा सकता है । कोई इन साधनों के द्वारा मुझे मेरे रूप में नहीं देख सकता है ।

54. भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन ।
ज्ञातुं द्रष्टुं चतत्त्वेन प्रवेष्टुं च परंतप ।।

अगर मेरी भक्ति से यक्सू रहे,
मेरा ज्ञान हो और मुझे देख ले ।
हक़ीक़त का उरफ़ाँ भी हासिल हो फिर,
मेरी ज़ात-ए आली में वासिल हो फिर ।।

शब्दार्थ –भक्त्या–भक्ति से; तु–तो; अनन्यया–अन्य में न होनेवाली, एकनिष्ठ; शक्यः–सम्भव; अहम्–मैं; एवंविधः–इस प्रकार का; अर्जुन–हे अर्जुन; ज्ञातुम्–जानने के लिये; द्रष्टुम्–देखने के लिये; च–और; तत्त्वेन–तत्त्व से, ठीक-ठीक; प्रवेष्टुम्–प्रवेश करने के लिये; च–और; परंतप–हे शत्रुओं को तपाने वाले अर्जुन ।
यक्सू–दृढ़ (अनन्य); हक़ीक़त–यथार्थ; उरफ़ाँ–ज्ञान; हासिल–प्राप्त; ज़ात-ए आली–परम सत्ता, वासिल–प्राप्ति ।

भावार्थ –परन्तु हे अर्जुन ! केवल अनन्य-भक्ति से मेरे संबंध में ऐसा ज्ञान, मेरे ऐसे दर्शन सम्भव हैं, इस अनन्य-भक्ति से ही मुझ में प्रवेश पाना सम्भव है ।

55. **मत्कर्मकृत् मत्परमो मद्भक्तद्ध संगवर्जितः ।**
निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डव ।।

मेरा भक्त हर काम मेरा करे,
तअल्लुक किसी से न नफ़रत करे ।
करे मुझको मक्सद अपना ख़्याल,
तो अर्जुन वो पा जाये मुझ से वसाल ।।

शब्दार्थ –मत्कर्मकृत्–जो मेरे लिये सब कर्म करता है; मत्परमः–मेरे में परायण; मद्भक्तः–मेरा भक्त; संगवर्जितः–आसक्ति रहित; निर्वैरः–शत्रुता-रहित; सर्वभूतेषु–सब प्राणियों में; यः–जो; सः–वह; माम्–मुझे; एति–प्राप्त कर लेता है; पाण्डव–हे पाण्डु के पुत्र अर्जुन ।

तअल्लुक–राग; नफ़रत–द्वेष; मक्सूद–उद्देश्य; वसाल–दर्शन ।

भावार्थ –हे अर्जुन ! जो व्यक्ति सब कर्म मेरे लिये करता है, जो मेरे परायण है–मुझे अपना लक्ष्य मानता है, मेरा भक्त है, आसक्ति रहित है, निर्वैर है–सब प्राणियों के प्रति शत्रुता को तिलांजलि दे देता है, वह अनन्य भक्ति पुरुष मुझ को प्राप्त होता है ।

विशेष सूचना : यह अध्याय पूर्णतः प्रक्षिप्त है ।

अध्याय में दर्शायी गई सम्पूर्ण विभूतियाँ सर्वव्यापी ईश्वर की हैं । क्योंकि श्रीकृष्ण योगावस्था में अर्जुन को उपदेश कर रहे हैं उस अवस्था में ''मैं'' का अर्थ जीवात्मा में बैठे परमतत्त्व ''परमात्मा'' से है । जागृत अवस्था में शरीर को, स्वप्नावस्था में मन को, सुषुप्ति अवस्था में आत्मा को और योगावस्था में परमात्मा को ''मैं'' के नाम से जाना जाता है ।

बारहवाँ अध्याय

वे व्यक्ति योगियों में श्रेष्ठ हैं जो दिन रात मन लगाकर प्रभुभजन करते हैं। वे भी जो सब प्राणियों को समान समझकर एवं इन्द्रियों को वश में कर प्रभुभजन में मन लगाते हैं वे प्राणिमात्र का हित करते हुए प्रभु को प्राप्त कर लेते हैं। मानव जो भी कर्म करे वही प्रभु को अर्पण कर दे। यदि यह भी न कर सकते तो सारे कर्मों के फल को त्याग दे। कर्मफल का त्याग सबसे अच्छा है। इससे व्यक्ति को परमशांति मिलती है।

भक्त की पहचान यह है कि वह किसी भी व्यक्ति से ईर्ष्या द्वेष नहीं करता है। वह सबसे मित्रता रखता है। प्राणिमात्र पर वह दया करता है। न वह कहीं ममता करता है न कभी अहंकार करता हैं।

प्रभुभक्त सुख व दुःख में समान रहता है। वह सदा क्षमा की भावना रखता है। उसे जो कुछ प्राप्त होता है उसी से संतुष्ट रहता है। उस से कोई नहीं डरता न वह किसी से दुःखी होता है। वह मित्र व शत्रु को समान समझता है। वह मान अपमान से भी अछूता रहता है। क्रोध, भय, लोभ आदि से भी दूर रहता है। उसका निश्चय सुदृढ़ होता है। जो व्यक्ति इस धर्मामृत को श्रद्धा व विश्वास के साथ ग्रहण करते हैं और उसी पर चलते हैं जो परमात्मा में लौ लगाए है वह भक्त प्रभु को बहुत प्यारे हैं। अतः स्वयं को श्रद्धा एवं प्रेम द्वारा ब्रह्म से एकाकार कर दो। वह तुम्हारा उद्धार कर देगा।

1. एवं सततयुक्ता ये भक्तास्त्वां पर्युपासते।
ये चाप्यक्षरमव्यक्तं तेषां के योगवित्तमाः।।

जो इस तरह भक्ति में सरशार हैं,
फ़कत आप ही के पुरस्तार हैं।
वो योगी हैं बेहतर कि बातन परस्त,
ख़फ़ी-लम यज़ल ज़ात आली के मस्त।।

शब्दार्थ –एवम्–इस प्रकार; सततयुक्ताः–निरन्तर ध्यान में लगे हुए; ये–जो; भक्ताः–भक्तजन; त्वाम्–तुझको; पर्युपासते– उपासना करते हैं; ये–जो; च–और; अपि–भी; अक्षरम्– अविनाशी; अव्यक्तम्–अव्यक्त रूप वाले; तेषाम्–उनमें; के– कौन; योगवित्तमाः–श्रेष्ठ योगी।

सरशार–युक्त; फ़कत–केवलमात्र; परस्तार–उपासक; बेहतर–अपेक्षाकृत श्रेष्ठ; बातन परस्त–निराकार के पुजारी, ख़फ़ी-लमयज़ल–अव्यक्त अक्षर; ज़ात-ए आली–परम सत्ता ।

भावार्थ– इस प्रकार जो भक्त आपका निरन्तर ध्यान करते हुए आपकी उपासना करते हैं, और दूसरी ओर जो भक्त आपके अविनाशी, अव्यक्त रूप का ध्यान करते हैं–इन दोनों में से कौन योगी श्रेष्ठतम माना जाये ।

2. मय्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते ।
श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्ततमा मताः ।।

हुए सुन के भगवान् यूँ गुलफ़िशाँ,
हैं बेहतर वही योग में बे-गुमाँ ।
यकीं से जो भक्ति करें मुस्तकिल,
मुझी से जो अपना लगाते हैं दिल ।।

शब्दार्थ –मयि–मुझमें; आवेश्य–स्थिर प्रवेश करके, लगाकर; ये–जो; माम्–मझे; नित्ययुक्ता–निरन्तर ध्यान करने वाले; उपासते–उपासना करते है ।; श्रद्धया–श्रद्धा से; परया–श्रेष्ठ; उपेताः–युक्त; ते–वे; मे–मेरे; युक्ततमाः–श्रेष्ठ योगी; मताः– माने जाते हैं ।

गुलफ़िशाँ–श्री मुख से कहने लगे; बेहतर–अपेक्षाकृत श्रेष्ठ; बे-गुमाँ–निःसन्देह; यकीं–श्रद्धायुक्त; मुस्तकिल–निरन्तर ।

भावार्थ– जो भक्त लोग अपने मन को मुझ में स्थिर करके सदा निष्ठापूर्वक, परम श्रद्धा के साथ मेरी उपासना करते हैं उन्हें मैं श्रेष्ठ योगी मानता हूँ ।

3. ये त्वक्षरमनिर्देश्यमव्यक्तं पर्युपासते ।
सर्वत्रगमचिन्त्यं च कूटस्थमचलं ध्रुवम् ।।

मगर वो जो पूजें ख़फ़ी पाक़ ज़ात,
जो कायम हैं दायम हैं और पुरसबात ।
ख्याल-ओ ज़हर-ओ ब्याँ से बलन्द,
जो हाज़िर है, नाज़िर है और बे-गज़न्द ।।

शब्दार्थ –ये–जो; तु–और; अक्षरम्–अविनाशी; अनिर्देश्यम्–अवर्णनीय; अव्यक्तम्–अव्यक्त को; पर्युपासते–उपासना करते हैं; सर्वत्रगम्–सर्वव्यापी; अचिन्त्यम्–अचिन्त्य; च–और; कूटस्थम्–कूटस्थ, स्थिर; अचलम्–अचल; ध्रुवम्–ध्रुव ।

ख़फी–निराकार; कायम–अक्षर; दायम–स्थिर; पुरसबात–अटल; ख्याल-ओ–अचिन्तनीय; ज़हूर-ओ (बलन्द)–अव्यक्त; ब्याँ से बलन्द–अकथनीय; हाज़िर–व्यक्त; नाज़िर–कूटस्थ; बे-गजन्द–अचल ।

भावार्थ– किन्तु जो भक्त अक्षर, अनिर्देश्य, अव्यक्त, सर्वगत, अचिन्त्य, कूटस्था, अचल, ध्रुव की उपासना करते हैं ।

4. संनियम्येन्द्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः ।
ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः ।।

हवास अपने काबू में रक्खें तमाम,
सकूँ-ओ तवाज़न हो दिल में मुदाम ।
हर एक की भलाई से मसरूर हों,
मुझीं से हो वासिल न महज़ूर हो ।।

शब्दार्थ –संनियम्य–वश में करके; इन्द्रियग्राममम्–इन्द्रिय समूह को; सर्वत्र–सब जगह; समबुद्धयः–समान बुद्धि वाले; ते–वे; प्राप्नुवन्ति–प्राप्त करते हैं; माम्–मुझे; एव–ही; सर्वभूतहिते–सब प्राणियों की हित-चिन्तना में; रताः–लगे हुए ।

हवास–इन्द्रियाँ; सकूँ–शान्ति; तवाज़न–सन्तुलन; मदाम–सदा; मसरूर–प्रसन्नचित; वासिल–प्राप्त; मजहूर–पृथक् ।

भावार्थ– वे सब इन्द्रियों को वश में करने वाले, सर्वत्र समबुद्धि रखने वाले, सब प्राणियों के कल्याण में आनन्द अनुभव करने वाले मुझे ही पाते हैं ।

5. क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम् ।
अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहविद्भिरवाप्यते ।।

जो ज़ात-ए ख़फ़ी में लगाते हैं दिल,
उठाते हैं तकलीफ़ वो मुत्तसइल ।
कि ज़ात-ए खफ़ी का है मुश्कल शहूद,
ख़फ़ी को न समझेंगे ऐहल-ए वजूद ।।

शब्दार्थ –क्लेशः–कष्ट; अधिकतरः–अत्यधिक; तेषाम्–उनका; अव्यक्ता-सक्तचेतसाम्–जो अव्यक्त में आसक्त (लगाये हुए) चित्त वाले हैं; अव्यक्ता–अव्यक्त की उपासना; हि–क्योंकि; गतिः–गति; दुःखम्–दुःख से, देहवद्भिः–देहधारियों द्वारा; अवाप्यते–प्राप्त की जाती है ।

ज़ात-ए ख़फ़ी–अव्यक्त; मुत्सइल–निरन्तर; शहूद–दृश्य; ऐहल-ए वजूद–देहधारी ।

भावार्थ– जिन लोगों का मन निराकार रूप में लगा हुआ है, उनकी कठिनाई (व्यक्त की उपासना करने वालों की अपेक्षा) कहीं अधिक है क्योंकि देहधारी व्यक्त मनुष्यों को निराकार की उपासना का मार्ग कठिन प्रतीत होता है ।

6. ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि संन्यस्य मत्पराः ।
अनन्येनैव योगेन मां ध्यायन्त उपासते ।।

जो आमाल सब मुझ पे कुरबाँ करें,
परस्तिश मेरी बा-दिल-ओ जाँ करें ।
जो मक्सूद आला मुझी को बनायें,
फ़कत मेरे ही ध्यान में दिल लगायें ।।

शब्दार्थ –ये–जो; तु–और; सर्वाणि–सब; कर्माणि–कर्मों को; मयि–मुझ में; संन्यस्य–समर्पण करके; मत्पराः–मुझ में परायण हैं; अनन्येन–अनन्य, एकनिष्ठ; एव–ही; योगेन–योग से; माम्–मुझको; ध्यायन्तः–ध्यान करते हुए; उपासते–उपासना करते हैं ।

कुरबाँ–न्यौछावर; परस्तिश–उपासना; बा-दिल-ओ जाँ–मनसा-वाचा-कर्मणा; मक्सूद–उद्देश्य; आला–परम; फ़क़त–केवलमात्र ।

भावार्थ– जो लोग अपने सब कर्मों को मुझ में समर्पण करके, मत्परायण होकर–मुझ पर ही अपने को छोड़कर–अनन्य भक्ति से मेरा ध्यान करते हैं ।

7. तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात् ।
भवामि नचिरात्पार्थ मय्यावेशितचेतसाम् ।।

मैं करता हूँ अर्जुन उन्हें कामगार,
तनासख के फ़ानी समुन्दर से पार ।
दिल अपना जो मुझ में लगाते रहें,
मुझी से निज़ात अपनी पाते रहें ।।

शब्दार्थ –तेषाम्–उनका; अहम्–मैं; समुद्धर्ता–उद्धार करने वाला; मृत्युसंसारसागरात्–मृत्यु और संसार-रूप सागर से; भवामि–होता हूँ; नचिरात्–शीघ्र ही; पार्थ–हे अर्जुन; मयि–मुझमें; आवेशित-चेतसाम्–मन वालों का ।

कामगार–सफल; तनासंज–आवागमन; फ़ानी–नश्वर; निजात–मुक्ति ।

भावार्थ– मुझ में अपने चित्त को डाल देते हैं, उसमें प्रविष्ट कर देते हैं, तो हे अर्जुन ! मैं इस मृत्युमय संसार-सागर से बिना विलम्ब के उनका उद्धार करने वाला बन जाता हूँ, उनको पार लगा देता हूँ ।

8. मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय ।
निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्वं न संशयः ।।

लगाये तो मुझ में दिल अपना लगा,
मुझी में तू कर महव अक़्ल-ए रमा ।
तो फिर इसमें हरगिज़ नहीं कुछ कलाम,
तू पायेगा मुझ में क्याम-ओ दवाम ।।

शब्दार्थ –मयि–मुझ में; एव–ही; मनः–मन को; आधत्स्व–स्थिर करो; बुद्धिम्–बुद्धि को; निवेशय–लगाओ; निवसिष्यसि–तुम निवास करोगे; एव–ही; अतः–इस से; ऊर्ध्वम्–बाद; संशयः–सन्देह ।

महव–तल्लीन; अक़्ल-ए रसा–विवेकिनीबुद्धि; कलाम–

निःसन्देह; क्याम-ओ दवाम–स्थायी निवास ।

भावार्थ– तू मुझ में मन और बुद्धि को लगा, इसके पश्चात् तू मुझ में ही निवास करेगा । इसमें कोई संदेह नहीं है ।

9. अथ चित्तं समाधातुं न शक्नोषि मयि स्थिरम् ।
अभ्यासयोगेन ततो मामिच्छाप्तुं धनंजय ।।

जो कायम न तू रख सके मुझ में दिल,
न यक्सू रहे ध्यान में मुस्तकिल ।
तो अभ्यास से कर तलाश-ए कमाल,
इसी योग से ढूँढ अर्जुन वसाल ।।

शब्दार्थ –अथ–और; चित्तम्–चित्त को; समाधातुम्–स्थिर करने में; शक्नोषि–समर्थ है; मयि–मुझ में; स्थिरम्–स्थिरता से; अभ्यासयोगेन–अभ्यास-योग द्वारा; ततः–फिर; माम्–मुझ को; इच्छ–चाह; आप्तुम्–प्राप्त करने के लिये; धनंजय–हे अर्जुन ।
कायम–स्थिर; यक्सू–एकाग्र; मुस्तकिल–निरन्तर; तलाश-ए कमाल–ईश्वर की खोज; वसाल–दर्शन ।

भावार्थ– हे अर्जुन ! अगर तू अपने चित्त को मुझ में स्थिर तौर पर रख देने में अपने को असमर्थ पाता है, तो तू अभ्यासयोग द्वारा मुझको प्राप्त होने के लिये इच्छा कर ।

10. अभ्यासेऽप्यसमर्थोऽसि मत्कर्मपरमो भव ।
मदर्थमपि कर्माणि कुर्वन्सिद्धिमवाप्स्यसि ।।

जो अभ्यास के हो न काबिल अगर,
तो फिर मेरी ख़ातिर सब आमाल कर ।
मेरे वास्ते ही जो आमल हो तू,
तो आमाल से मरद-ए कामल हो तू ।।

शब्दार्थ –अभ्यासे–अभ्यास में; अपि–भी; असमर्थः–असमर्थ; असि–है; मत्कर्मपरमः–मेरे ही कर्म में लगा हुआ; भव–हो; मदर्थम्–मेरे लिये; अपि–भी; कर्माणि–कर्मों को; कुर्वन्–करता हुआ; सिद्धिम्–सिद्धि को; अवाप्स्यसि–प्राप्त करेगा ।
काबिज–योग्य; आमाल–कर्म; आमल–कर्ता; मरद-ए कामल–सिद्ध ।

भावार्थ– यदि तू अभ्यास द्वारा भी चित्त को मुझ में केन्द्रित करने में अपने को असमर्थ पाता है, तब तू कर्ममात्र को मुझे अर्पण कर दे; मेरे लिये कर्म करता हुआ भी तो सिद्धि को प्राप्त होगा ।

11. अथैतदप्यशक्तोऽसि कर्तुं मद्योगमाश्रितः ।
सर्वकर्मफलत्यागं ततः कुरु यतात्मवान् ।।

रियाज़त में भी गर तू हीटा रहा,
तो ले फिर मेरे योग का आसरा ।
तू रख दिल पे काबू किये जा अमल,
किये जा अमल, छोड़ दे उनके फल ।।

शब्दार्थ –अथ–और, यदि; एतद्–इसको; अपि–भी; असि–है; कर्तुम–करने के लिये; मद्योगम्–मेरे साथ योग को; आश्रितः–आश्रय किए हुए; सर्वकर्मफलत्यागम्–सर्व कर्मों के फलों का त्याग; ततः–फिर; कुरु–कर दे; यतात्मवान्–जितेन्द्रिय ।
रियाज़त–अभ्यास; हीटा–असमर्थ ।

भावार्थ– यदि तू यह भी करने में स्वयं को असमर्थ समझता है, तो मेरे साथ जुटकर यत्नपूर्वक आत्मा में बल धारण करके सब कर्मों के फल को त्याग दे ।

12. श्रेयो हि ज्ञानमभ्यासाज्ज्ञानाद्ध्यानं विशिष्यते ।
ध्यानात्कर्मफलत्यागस्त्यागाच्छान्तिरनन्तरम् ।।

कि अफ़ज़ल है अभ्यास करने से ज्ञान,
मगर ज्ञान से बढ़ के होता है ध्यान ।
है तर्क-ए समर ध्यान से भी फ़ज़ूँ,
कि तर्क-ए समर से हो फ़ौरन सकूँ ।।

शब्दार्थ –श्रेयः–श्रेष्ठ है; हि–क्योंकि; ज्ञानम्–ज्ञानमार्ग; अभ्यासात्–अभ्यास-मार्ग से; ज्ञानात्–ज्ञान से; ध्यानम्–ध्यान मार्ग; विशिष्यते–विशेष है; ध्यानात्–ध्यान से; कर्मफल- त्यागः–कर्म के फलों का त्याग (श्रेष्ठ है); त्यागात्–कर्मफल-त्याग से; शान्तिः–शान्ति; अनन्तरम्–तत्पश्चात् ।
अफ़ज़ल–श्रेष्ठ; तर्क-ए समर–कर्म-फल त्याग; फ़ज़ूँ–श्रेष्ठ; सकूँ–शान्ति ।

भावार्थ– अभ्यास मार्ग से ज्ञानमार्ग श्रेष्ठ है, ज्ञानमार्ग से ध्यानमार्ग विशेष है, ध्यानमार्ग से कर्मफल के त्याग का मार्ग विशेष है क्योंकि त्याग से तुरन्त शान्ति मिलती है ।

13. अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च ।
निर्ममो निरहंकारः समदुःखसुखः क्षमी ।।

वो इन्साँ जो सुख-दुःख में हम्वार है,
जो हर इक का हम-दर्द ग़मख़्वार है ।
किसी का न वैरी हो बख़्शे कसूर,
ख़ुदी से भी दूर और तअल्लुक से दूर ।।

शब्दार्थ –अद्वेष्टा–द्वेष न करने वाला; सर्वभूतानाम्–सब भूतों का; मैत्रः–मित्रता रखने वाला; करुणः–दयावान्; एव–ही; च–और; निर्ममः–ममत्व रहित; निरहंकारः–अहम्भाव से रहित; समदुःखसुखः–दुःख और सुख में एक-सा व्यवहार वाला; क्षमी–क्षमावान् ।

हम्वार–समान; हम-दर्द–हितैषी; ग़म-ख़्वार–हितैषी; कसूर–भूल; ख़ुदी–अहंकार; तअल्लुक–आसक्ति ।

भावार्थ– जो व्यक्ति किसी प्राणी से द्वेष नहीं करता, जो सबका मित्र है, सबके प्रति दया का व्यवहार करता है, जो ममता और अहंकार से रहित है, सुख-दुःख में समान है, क्षमावान् है ।

14. संतुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढ़निश्चयः ।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः ।।

वो योगी जिसे ख़ुद पे है इख़्त्यार,
जो साबर है और अज़्म में उस्तवार ।
दिल-ओ अक़्ल जो मुझ पे क़ुरबाँ करे,
वही है मेरा भक्त प्यारा मुझे ।।

शब्दार्थ –सन्तुष्टः–सन्तोषी; सततम्–निरन्तर; योगी–योगी; यतात्मा–संयमी; दृढ़निश्चयः–दृढ़ निश्चय वाला, संयमी; मयि–मुझ में; अर्पितमनोबुद्धिः–मन और बुद्धि को समर्पण करने वाला; यः–जो;

मद्भक्तः—मेरा भजन करने वाला; सः—वह; मे—मेरा; प्रियः—प्रिय है ।

खुद—मन; इख़्त्यार—निग्रह; सावर—सन्तुष्ट; अज़्म—निश्चय; उस्तवार—दृढ़ ।

भावार्थ— जो योगी निरन्तर सन्तुष्ट है स्वयं योगयुक्त है, स्वयं को वश में रखता है, जिसका निश्चय दृढ़ है, जिसने अपने मन और बुद्धि को मुझ में अर्पण कर दिया है—ऐसा मेरा भक्त मुझे प्यारा है ।

15. यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः ।
हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः ।।

जो दुनियाँ को आज़ार देता नहीं,
जो दुनियाँ से आज़ार लेता नहीं ।
बरी बुग़ज़-ओ ऐश-ओ ग़म-ओ खौफ़ से,
वही है मेरा भक्त प्यारा मुझे ।।

शब्दार्थ —यस्मात्—जिससे; उद्विजते—उद्विग्न होता है; लोकः— लोग; लोकात्—लोंगों से; उद्विजते—उद्वेग पाता है; च—और; यः—जो; हर्षामर्षभयोद्वेगैः—हर्ष, क्रोध, भय नामक उद्वेगों से; मुक्तः—मुक्त; यः—जो; सः—वह; च—और; मे—मेरा; प्रियः—प्रिय है ।

आज़ार—दुःख; वरी—रहित; बुराज़—द्वेष; ऐश—उद्वेग; खौफ़—भय ।

भावार्थ— जिससे लोग उद्विग्न नहीं होते, जो लोगों में उद्वेग से मुक्त है वह मुझे प्यारा है ।

16. अनपेक्षः शुचिर्दक्ष उदासीनो गतव्यथः ।
सर्वारम्भपरित्यागी यो मद्भक्तः स मे प्रियः ।।

जो चौकस है बे-लाग और बे-न्याज़
दुःखों से मुबर्रा है और पाक-बाज़ ।
जो तर्क-ए जज़ा इब्तदा से करे,
वही है मेरा भक्त प्यार मुझे ।।

शब्दार्थ –अनपेक्षः–इच्छारहित; शुचिः–पवित्र; दक्षः–कार्यकुशल; उदासीनः–तटस्थ; गतव्यथः–सारे कष्टों से मुक्त; सर्वारम्भपरित्यागी–सब प्रकार के कर्मफल के प्रति उद्योगों को छोड़ने वाला; यः–जो; मद्भक्तः–मेरा भक्त है; सः–वह; मे–मेरा; प्रियः–प्रिय है ।

मुबर्रा–तटस्थ; चौकस–चतुर; बेलाग–निरपेक्ष; बेन्याज़–उदासीन; पाक-बाज़–पवित्र; तर्क-ए जज़ा– सर्वारम्भ-परित्यागी ।

भावार्थ– जो किसी से कोई आशा नहीं रखता, जो पवित्र है, कुशल है, तटस्थ है, व्यथारहित है, जिसने कर्मफल के संबंध में सब उद्योग परे फेंक दिये हैं, ऐसा जो मेरा भक्त है वह मुझे अत्यंत प्रिय है ।

17. यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न कांक्षति ।
शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान्यः स मे प्रियः ।।

मुसर्रत से भी दूर नफ़रत से दूर,
ग़म-ओ ख़्वाइश-ओ नेक-ओ बद से नफ़ूर ।
हमेशा जो भक्ति में शादाँ रहे,
वही है मेरा भक्त प्यारा मुझे ।।

शब्दार्थ –यः–जो; हृष्यति–हर्षित होता है; द्वेष्टि–द्वेष करता है; शोचति–शोक करता है; कांक्षति– कोई आशा ही करता है; शुभाशुभपरित्यागी–कर्मों के शुभ और अशुभ फलों को जिसने त्याग दिया है; भक्तिमान्–भक्तिमान; सः–वह; मे–मेरा; प्रियः–प्रिय है ।

मुसर्रत–हर्ष; नफ़रत–द्वेष; नेक–शुभ; बद–अशुभ; नफ़ूर–रहित; शादाँ–आनन्दित ।

भावार्थ– जो न हर्ष करता है, न द्वेष करता है, न दुःख मानता है, न आशाएँ बाँधता है, जिसने भले-बुरे दोनों का परित्याग कर दिया है–ऐसा भक्त मुझे बहुत प्रिय है ।

18. समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः ।
शीतोष्णसुखदुःखेषु समः संगतविवर्जितः ।।

बराबर जिसे दोस्त दुश्मन तमाम,
न सुख-दुःख न इज़्ज़त न जिल्लत से काम ।
हो गरमी कि सरदी जिसे एक सी,
लगन हो किसी से न जिसकी लगी ।।

शब्दार्थ – समः–समदर्शी; शत्रौ–शत्रुओं में; च–और; मित्रे–मित्र में; मानापमानयोः–मान और अपमान दोनों ही में; शीतोष्णसुखदुःखेषु–शीत, गर्मी, सुख और दुःख में; समः– बराबर, एक-रस; संगविविर्जितः–आसक्ति से रहित ।
ज़िल्लत–अपमान ।

भावार्थ– जो शत्रु और मित्र के प्रति सम-दृष्टि से देखता है, मान-अपमान, शीत-उष्ण, सुख-दुःख में सम रहता है, आसक्ति से जो रहित है ।

19. तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी संतुष्टो येन केनचित् ।
अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमान्मे प्रियो नरः ।।

बराबर हों जिसके लिये मद्दा-ओ ज़म,
वो कम-गो न जिसको ग़म-ओ बेश-ओ कम ।
कवी दिल का आज़ाद घर-बार से,
वही है मेरा भक्त प्यार मुझे ।।

शब्दार्थ – तुल्यनिन्दास्तुति–निन्दा और स्तुति दोनों ही में जो एक भाव से रहता है; मौनी–प्रकृति से मितभाषी; सन्तुष्टः–सन्तोषी; येन–जिस; केनचित्–किसी भी वस्तु से; अनिकेतः–बिना घर बार के; स्थिरमतिः–दृढ़ संकल्प वाला; भक्तिमान्–भक्ति से ओत-प्रोत; मे–मेरा; प्रियः–प्रिय है; नरः–मनुष्य ।
मद्दा–स्तुति; ज़म–निन्दा; कम-गो–मौनी; बेश-ओ कम–न्यूनाधिक; कवी–दृढ़ मन वाला ।

भावार्थ– जो निन्दा और स्तुति को एक समान समझता है, जो मितभाषी है, जो कुछ मिल जाये उसी से जो सन्तुष्ट रहता है, जिसका कोई नियत निवास स्थान नहीं, जिसकी बुद्धि स्थिर है, जो भक्तिमान् है–ऐसा भक्त मुझे अत्यंत प्रिय है ।

20. ये तु धर्म्यामृतमिदं यथोक्तं पर्युपासते ।
श्रद्दधाना मत्परमा भक्तास्तेऽतीव मे प्रियाः ।।

जो करते हैं कायम यह अमृत-सा धर्म,
यकीं से जो रखते हैं सीनों को गर्म ।
जो मकसूद आला समझ लें मुझे,
वही भक्त हैं सब से प्यारे मेरे ।।

शब्दार्थ –ये–जो; तु–और; धर्म्यामृतम्–धर्मानुकूल और अमृततुल्यः इदम्–यह; यथा–जैसे; उक्तम्–कहा है; पर्युपासते–पूर्णतः तत्पर रहते हैं; श्रद्दधानाः–श्रद्धा के साथ; मत्परमाः–मुझमें लगे हुये; भक्ताः–भक्त जन; ते–वे; अतीव–अत्यधिक; मे–मेरे; प्रियाः–प्यारे हैं ।

कायम–परायण; यकीं–श्रद्धा; मक्सूद–उद्देश्य; आला–परम ।

भावार्थ– जो इस भक्ति के अमर पथ का अनुसरण करते हैं और जो मुझे ही अपना चरम लक्ष्य बना कर श्रद्धासहित पूर्णरूपेण संलग्न रहते हैं, वे भक्त मुझे अत्यंत प्रिय हैं ।

विशेष सूचना : यह अध्याय पूर्णतः प्रक्षिप्त है ।

अध्याय में दर्शायी गई सम्पूर्ण विभूतियाँ सर्वव्यापी ईश्वर की हैं । क्योंकि श्रीकृष्ण योगावस्था में अर्जुन को उपदेश कर रहे हैं उस अवस्था में ''मैं'' का अर्थ जीवात्मा में बैठे परमतत्त्व ''परमात्मा'' से है । जागृत अवस्था में शरीर को, स्वप्नावस्था में मन को, सुषुप्ति अवस्था में आत्मा को और योगावस्था में परमात्मा को ''मैं'' के नाम से जाना जाता है ।

तेरहवाँ अध्याय

यह सबसे अधिक दार्शनिक अध्याय है। इसमें शरीर को क्षेत्र और आत्मा को क्षेत्रज्ञ के नाम से पुकारा गया है। पांच महाभूत (पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, आकाश) पांच कर्मेन्द्रियाँ (हाथ पैर, वाणी, मलद्वार और मूत्रद्वार) पांच ज्ञानेन्द्रियां–(आँख, कान, नाक, रसना और त्वचा) और मन, बुद्धि, अहंकार, ये सब क्षेत्र और उसके विकार हैं। जितने भी स्थावर, जंगम प्राणी उत्पन्न होते हैं, वे क्षेत्र एवं क्षेत्रज्ञ (प्रकृति एवं पुरुष) के संयोग से ही होते हैं।

मान की इच्छा न करना, अभिमान न करना, किसी प्राणी को न सताना आदि ज्ञान है और इनके विपरीत जो काम हैं वे है अज्ञान। ईश्वर सर्वव्यापक है। वह सब इन्द्रियों के व्यापार में दिखाई पड़ता है। परन्तु उसकी कोई इन्द्रिय नहीं है। वह निर्गुण होते हुये भी गुणों को भोगता हुआ प्रतीत होता है। वह सब में एक है। प्रकृति एवं पुरुष दोनों अनादि हैं विकार और गुण प्रकृति से ही उत्पन्न होते हैं। प्रकृति कारण और मानव सुख-दुःख भोगने वाला है। जैसे आकाश सर्वव्यापक होते हुए भी सूक्ष्मता के कारण कहीं लिप्त नहीं होता वैसे ही सारे शरीर में रहकर भी आत्मा दोषों में लिप्त नहीं होता है। जैसे सूर्य सारे संसार को प्रकाशित करता है वैसे ही यह आत्मा सारे शरीर को प्रकाशित करता है।

स्वातंत्र्य (निर्वाण, जीवन-मुक्ति, मोक्ष) ही हमारा अंतिम लक्ष्य है। चिरस्थायी परमानंद केवल इसी राह पर चल कर प्राप्त किया जा सकता है; साथ ही परमात्मा को गहन ध्यान इस राह पर प्रकाश बिखेरता रहता है। संसार प्रभु की अद्‌भुत लीला है। परंतु जिस क्षण आप परम सत्य के ज्ञान में स्थापित हो जाते हैं–सुख व दुःख का संसार विलीन हो जाता है। यही स्वतंत्रता है। सूर्य झील में नृत्य करता है, प्रकृति आत्मा में नृत्य करती है, परन्तु दोनों स्थितियाँ वैसी ही हैं जैसे रस्सी पर सर्प का आरोपित रूप हो। रस्सी सत्य है, सर्प माया है उसी से उत्पन्न होता है और उसी में समा जाता है।

1. इदं शरीरं कौन्तेय क्षेत्रमित्यभिधीयते।
एतद्यो वेत्ति तं प्राहुः क्षेत्रज्ञ इति तद्‌विदः।।

तुझे अब बताता हूँ कुन्ती के लाल,
कि यह जिस्म इक खेत की है मिसाल ।
है इस खेत का राज़ जिस पर अयाँ,
कहें क्षेत्रज्ञ इसको सब राज़-दाँ ।।

शब्दार्थ –इदम्–यह; शरीरम्–शरीर; कौन्तेय–हे अर्जुन; क्षेत्रम्–क्षेत्र; इति–इस प्रकार; अभिधीयते–कहा जाता है; एतत्–इसको; यः–जो; वेत्ति–जानता है; तम्–उसको; प्राहुः–कहते हैं; क्षेत्रज्ञः–क्षेत्रज्ञ; इति–इस प्रकार से; तद्विदः–उसके जानने वाले तत्त्वज्ञानी ।

मिसाल–दृष्टांत; राज़–भेद; इयाँ–प्रगट; राज़-दा–ब्रह्मज्ञानी ।

भावार्थ –हे अर्जुन ! यह शरीर क्षेत्र कहलाता है, और जो व्यक्ति इस क्षेत्र को जानता है उसे तत्त्वज्ञानी लोग क्षेत्रज्ञ कहते हैं ।

2. क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत ।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्ज्ञानं यत्तज्ज्ञानं मतं मम ।।

समझ खेत का राज़-दाँ हूँ तो मैं,
कि हर खेत के दरमियाँ हूँ तो मैं ।
जो यह खेत और क्षेत्रज्ञ का है इल्म,
मेरी राय में सब से आला है इल्म ।।

शब्दार्थ –क्षेत्रज्ञम्–क्षेत्र का ज्ञाता; च–और; अपि–भी; माम्–मुझे; विद्धि–जान; सर्वक्षेत्रेषु–सब क्षेत्रों में; भारत–हे भरत कुल में उत्पन्न अर्जुन; क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोः–क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ का; ज्ञानम्–ज्ञान; यत्–जो; तत्–वह; ज्ञानम्–ज्ञान; मतम्–मानता हूँ; मम–मेरा, मुझे ।

दरमियाँ–मध्ये; इल्म–ज्ञान; आला–उत्तम ।

भावार्थ– हे अर्जुन ! संसार के सब क्षेत्रों में तू मुझे क्षेत्रज्ञ जान । मेरा मत है कि क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ के भेद का जो ज्ञान है वही वास्तविक ज्ञान है ।

3. तत्क्षेत्रं यच्च यादृक्च यद्विकारि यतश्च यत् ।
स च यो यत्प्रभावश्च तत्समासेन मे शृणु ।।

सुन अर्जुन है क्या खेत क्या उसके गुन,
तग़ीयर हूँ कैसे कहाँ से यह सुन ।
है कौन और क्या कूवत-ए राज़ दाँ,
मैं करता हूँ अब मुक्तरसर-सा ब्याँ ।।

शब्दार्थ – तत्–वह; क्षेत्रम्–कर्मक्षेत्र; यत्–जो है; च–और; यादृक–जैसा है; यद्विकारि–जैसे विकार वाला या जिसका विकार (परिवर्तित रूप) है; यतः–जहाँ से (वह आया है); सः–वह; तत्–उसको; समासेन–संक्षेप से; मे–मुझ से; शृणु–सुन ।
तग़ीयर–विकार; कूअत–शक्ति; मुक्तसर–संक्षेप में; ब्याँ–वर्णन ।

भावार्थ– वह क्षेत्र जो और जैसा है तथा विकारों वाला है और जिस कारण से जो हुआ है एवं वह क्षेत्रज्ञ भी जो और जिस प्रभाव वाला है वह मुझ से संक्षेप में सुन ।

4. ऋषिभिर्बहुधा गीतं छन्दोभिर्विविधैः पृथक् ।
ब्रह्मसूत्रपदैश्चैव हेतुमद्भिर्विनिश्चितैः ।।

यह ऋषियों ने गाया कई रंग से,
बहुत मीठे छन्दों के आहंग से ।
यह ब्रह्म-सूत्रों में भी मस्तूर है,
यही बा-दलील इनमें मज़कूर है ।।

शब्दार्थ – ऋषिभिः–ऋषियों द्वारा; बहुधा–बहुत प्रकार से; गीतम्–गान किया, वर्णन किया गया है; छन्दोभिः–वैदिक मंत्रों से; विविधैः–अनेक प्रकार के; पृथक्–यह क्षेत्रज्ञ पृथक् है; ब्रह्मसूत्रपदैः–वेदान्तदर्शन के नीति वचनों द्वारा; च–और; एव–ही; हेतुमद्भिः–तर्क-युक्तियों से; विनिश्चतैः– निर्णय से युक्त ।
आहंग–मिलाप; मस्तूर–छिपा हुआ; बा-दलील–युक्तियुक्त; मज़कूर–वर्णित ।

भावार्थ– क्षेत्र का ऋषियों द्वारा, विविध मंत्रों से, अनेक प्रकार गान किया गया है । क्षेत्र तथा क्षेत्रज्ञ–ये दोनों अलग-अलग हैं, एक ही नहीं

हैं। क्षेत्र का वर्णन निश्चययुक्त ब्रह्मसूत्रों और तर्क द्वारा किया गया है।

5. महाभूतान्यहंकारो बुद्धिरव्यक्तमेव च।
इन्द्रियाणि दशैकं च पंच चेन्द्रियगोचराः।।

अनासर, अहंकार, अक़्ल-ए मुहीत,
यह दिल दस हवास और यह फ़ितरत बसीत।
यह आवाज़ मिस ज़ायका रंग-ए वास,
करें जिनकी महसूस पाँचों हवास।।

शब्दार्थ – महाभूतानि–पाँच महाभूत; अहंकारः–अहंकार; बुद्धिः–बुद्धि; अव्यक्तम्–अव्यक्त; एव–ही; च–और; इन्द्रियाणि– पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और पाँच कर्मेन्द्रियाँ; दश–ये दस हैं; एकम्–एक मन; च–और; पंच–पाँच; च–और; इन्द्रियगोचराः–इन्द्रियों के विषय हैं।

अनासर–महाभूत; अक़्ल-ए मुहीत–आच्छादित बुद्धि; हवास–इन्द्रियाँ; फ़ितरत–मूल प्रकृति; मिस–पाँच ज्ञानेन्द्रिय; पाँचों हवास–पाँच कर्मेन्द्रियाँ।

भावार्थ– तो फिर क्षेत्र की व्याख्या क्या है? क्षेत्र में क्या-क्या आ जाता है? पाँच महाभूत (पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश), अहंकार, बुद्धि, अव्यक्त, मूल प्रकृति, दस इन्द्रियाँ (पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ–आँख, नाक, कान, जीभ और त्वचा; पाँच कमेन्द्रियाँ–हाथ, पैर, मुंह और मल-मूत्रेन्द्रियाँ), एक (मन), इन्द्रियों के पाँच विषय (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध)।

6. इच्छा द्वेषः सुखं दुःखं संघातश्चेतना धृतिः।
एतत्क्षेत्रं समासेन सविकारमुदाहृतम्।।

यह सुख-दुःख यह नफ़रत भी तरग़ीब भी,
खिरद-पायदारी भी तरकीब भी।
ये हैं खेत और उनकी तबदीलियाँ,
इन्हीं का है यह मुक्तसर-सा ब्याँ।।

शब्दार्थ – द्वेषः–द्वेष; सुखम्–सुख; दुःखम्–दुःख; संघातः–समूह; धृतिः–धैर्य; एतत्–यह; क्षेत्रम्–क्षेत्र; समासेन–संक्षेप में; सविकारम्–विकारों सहित; उदाहृतम्–वर्णित किया है ।

नफ़रत–द्वेष; तरग़ीब–राग; खिरद-पायदारी–स्थिरबुद्धि; तरकीब–सुचारू रूप से; मुक्तसर–संक्षेप में; ब्याँ–वर्णन ।

भावार्थ– इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख, शरीर का स्थूल पिण्ड, चेतना, धृति–इस प्रकार विकारों सहित यह क्षेत्र संक्षेप में कहा गया ।

7. अमानित्वमदम्भित्वमहिंसा क्षान्तिरार्जवम् ।
आचार्योपासनं शौचं स्थैर्यमात्मविनिग्रहः ।।

मैं करता हूँ अब ज्ञान के गुन शुमार,
ये हैं रास्ता, हमल, अफ़ू, इन्कसार ।
अहिंसा भी और खिदमत-ए उत्साद की,
दिली-पुखतगी ज़ब्त पाक़ीज़गी ।।

शब्दार्थ – अमानित्वम्–अभिमान न होना; अदम्भित्वम्–दम्भ न होना; अहिंसा–हिंसा न करना; क्षान्तिः–क्षमा करना; आर्जवम्–सरलता; आचार्योपासनम्–आचार्य की सेवा में बैठना; शौचम्–पवित्रता; स्थैर्यम्–स्थिरता; आत्मविनिग्रहः–आत्मा का संयम करना ।

गुन शुमार–गुणों की गिनती; रास्ती–सत्यता; हलम–नम्रता; अफ़ू–क्षमा; इन्कसार–सरलता; खिदमत–सेवा; उस्ताद–गुरु; दिली पुख़तगी–मानसिक दृढ़ता; ज़ब्त–निग्रह; पाकीज़गी–पवित्रता ।

भावार्थ– अभिमान न होना, दंभ-छल-कपट न होना, अहिंसा, क्षमा, सरलता, आचार्य की सेवा, शरीर तथा मन की शुद्धता, स्थिरता, आत्म-संयम ।

8. इन्द्रियार्थेषु वैराग्यमनहंकार एव च ।
जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनम् ।।

न होना सरोकार लज़्ज़ात से,
किनारा अहंकार की बात से ।
यही ग़ौर करना कि लें छीन सुख,
जन्म, मौत, पीरी, मरज़, दर्द, दुःख ।।

शब्दार्थ –इन्द्रियार्थेषु–इन्द्रियों के विषयों में; वैराग्यम्–वैराग्य; अनहंकारः–अहंकारशून्यता; एव–ही; च–और; जन्ममृत्यु जराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनम्–संसार में जन्म, मृत्यु, बुढ़ापा,रोग, दुःख–इन दोषों का देखना ।

लज़्जात–इन्द्रियों के अर्थ; पीरी–बुढ़ापा; मरज़–रोग ।

भावार्थ– इन्द्रियों के विषयों में वैराग्य, अहंकार-शून्यता, संसार में जन्म, मृत्यु, वृद्धावस्था, रोग और दुःख–इन दोषों को देखना ।

9. असक्तिरनभिष्वंगः पुत्रदारगृहादिषु ।
नित्यं च समचित्तत्वमिष्टानिष्टोपपत्तिषु ।।

न वाबस्तगी रिश्ता-ओ बन्द से,
न घर से, न ज़न से, न फ़रज़न्द से ।
तवाज़न से होना सकूँ-ओ करार,
गवारा हो सूरत कि हो ना-गवार ।।

शब्दार्थ –असक्तिः–अनासक्तिः; अनभिष्वंगः–मोह-ममता का न होना; पुत्रदारगृहादिषु–पुत्र, पत्नी और गृह आदियों में; नित्यम्–नित्य; च–और; समचित्तत्वम्–चित में समभाव रखना; इष्टा-निष्टोपपत्तिषु–अभीष्ट और अनभीष्ट की प्राप्ति होने पर ।

वाबस्तगी–आसक्ति; रिश्ता-ओ बन्द–सम्बन्धी; जन–स्त्री; फरजन्द–पुत्र; तवाज़न–समचित; सकूँ-ओ करार–शान्ति; गवारा–इष्ट; ना-गवार–अनिष्ट ।

भावार्थ– पुत्र-स्त्री-गृह-धन आदि में आसक्ति का अभाव, ममता न होना, अभीष्ट, प्रिय तथा अप्रिय में सदा ही चित्त का सम रहना ।

10. मयि चानन्ययोगेन भक्तिरव्यभिचारिणी ।
विविक्तदेशसेवित्वमरतिर्जनसंसदि ।।

फ़कत धारणा मेरी भक्ति का योग,
दूई का न होना ज़रा दिल में रोग ।
अलग रह के महसूस करना सरूर,
हज़ूम-ए खलायक से होना नफ़ूर ।।

शब्दार्थ – मयि–मुझ में; च–और; अनन्ययोगेन–एकतान ध्यानयोग से; भक्तिः–भक्ति; अव्यभिचारिणी–स्थिर; विविक्तदेश-सेवित्वम्–एकान्त स्थान का सेवन; अरतिः–अरुचि; जनसंसदि–जन-समुदाय में ।

फ़कत–केवलमात्र; सरूर–आनन्द; हजूम-ए खलनायक–जन-समूह; नफूर–अलग-थलग ।

भावार्थ– अनन्य-भाव से मुझ में एकनिष्ठ भक्ति, एकान्त स्थान का सेवन, जन-समुदाय में सम्मिलित होने में अरुचि ।

11. अध्यात्मज्ञाननित्यत्वं तत्त्वज्ञानार्थदर्शनम् ।
उतज्ज्ञानमिति प्रोक्तमज्ञानं यदतोऽन्यथा ।।

ख़्याल-अध्यात्म का शाम-ओ सहर,
हक़ीक़त के मकसद पे रखना नज़र ।
यह इल्मों का है इल्म यह ज्ञान है,
खिलाफ़ इसके जो कुछ है अज्ञान है ।।

शब्दार्थ – अध्यात्मज्ञाननित्यत्वम्–निरन्तर आत्मा के ज्ञान में लीन रहना; तत्वज्ञानार्थदर्शनम्–तत्वज्ञान ही जीवन का प्रयोजन है ऐसा भान करना; एतत्–यह; ज्ञानम्–ज्ञान; इति–इस प्रकार से; प्रोक्तम्–कहा गया है; अज्ञानम्–अज्ञान; यत्–जो; अतः–इससे; अन्यथा–भिन्न, उल्टा ।

शाम–सायंकाल; सहर–प्रातःकाल; हक़ीक़त–तत्त्वज्ञान; मकसद–उद्देश्य; खिलाफ–विरुद्ध ।

भावार्थ– निरन्तर आत्मा के ज्ञान में मगन रहना, तत्त्वज्ञान ही जीवन का अर्थ है, प्रयोजन है–यह भान हो जाना, यही ज्ञान कहलाता है; इससे जो भिन्न है वह अज्ञान है ।

12. ज्ञेयं यत्तत्प्रवक्ष्यामि यंज्ञात्वाऽमृतमश्नुते ।
अनादिमत्परं ब्रह्म न स त्तन्नासदुच्यते ।।

सज़ावार-ए उरफ़ाँ है वो पाक-ए ज़ात,
कि है इल्म ही उसका आब-ए-हय्यात ।
वो बे-इब्तदा लम-यज़ल ज़ी हशम,
न सत या असत कह सकें जिसको हम ।।

शब्दार्थ –ज्ञेयम्–जानने योग्य 'ज्ञेय'; यत्–जो है; तत्–उसको; प्रवक्ष्यामि–बतलाऊँगा; यत्–जिसको; ज्ञात्वा–जानकर; अमृतम्–अमरता; अश्नुते–प्राप्त होता है; अनादिमत्–जो आदिवाला नहीं; सत्–सत् है; तत्–वह; असत्–असत्; उच्यते–कहलाता है ।

सज़ावार-ए उरफ़ा–ज्ञेय; पाक-ए ज़ात–पावन सत्ता; आब-ए हय्यात–अमृत; बे-इब्तदा–अनादि; लम-यज़ल–विकाररहित; ज़ी-हशम–परम ब्रह्मा ।

भावार्थ– अब मैं तुझे यह बतलाऊँगा कि ज्ञेय क्या है, जानने योग्य क्या है जिसे जान लेने पर अमृत की प्राप्ति हो जाती है । वह ज्ञेय है अनादि परब्रह्म, जिसके विषय में न यह कह सकते हैं कि वह सत् है, न यह कह सकते हैं कि वह असत् है ।

13. सर्वतः पाणिपादं तत् सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम् ।
सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ।।

उसी के हैं सब दस्त-ओ पा चारसू,
उसी का है रुख रूनमा चारसू ।
उसी की नज़ार कान सर हर तरफ,
मुहीत-ए जहाँ सर-बसर हर तरफ ।।

शब्दार्थ –सर्वतः पाणिपादम्–सब ओर हाथ-पैर वाला; तत्–वह; सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्–सब ओर आँख, सिर और मुख वाला; सर्वतः श्रुतिमत्–सब ओर कान वाला; लोके–संसार में; सर्वम्–सब को; आवृत्य–लपेट कर; तिष्ठति–ठहरता है ।

दस्त–हस्त; पा–पैर; रुख–मुख; रूनुमा–प्रगट; मुहीत–घेरा हुआ; सर-बसर–परिपूर्ण ।

भावार्थ– उसके हाथ, पाँव, आँखें, सिर, मुँह एवं सर्वत्र हैं । क्योंकि वह संसार में सबको व्याप्त करके स्थित है ।

14. सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम् ।
असक्तं सर्वभृच्चैव निर्गुणं गुणभोक्तृ च ।।

बज़ाहर नहीं गुरचि उसके हवास,
दरख़शाँ सफ़ात-ए हवास उसके पास ।
वो है बे-तअल्लुक मगर सबका रब,
गुणों से बरी और गुण उसमें सब ।।

शब्दार्थ –सर्वेन्द्रियगुणाभासम्–उसमें सर्व इन्द्रियों के गुणों का आभास विद्यमान है; सर्वन्द्रियविविर्जितम्–सब इन्द्रियों से रहित; असक्तम्–अनासक्त; सर्वभृत्–सबका भरण करने वाला; च–और; एव–ही; निर्गुणम्–प्रकृति के सत्व, रज, तम गुणों से रहित, गुणभोक्तृ–गुणों का भोगने वाला ।

बज़ाहिर–प्रगट रूप में; हवास–इन्द्रियाँ; दरख़शाँ–दिव्य; सफ़ात–गुण; बे-तअल्लुक–निरासक्त; बरी–तटस्थ ।

भावार्थ– उसकी अपनी कोई इन्द्रिय नहीं है फिर भी सब इन्द्रियों का आभास उसमें विद्यमान है, वह अनासक्त है फिर भी सबको सम्भाले हुए है, वह स्वयं प्रकृति के सत्व, रज, तम गुणों से रहित है फिर भी गुणों का भोगने वाला है ।

15. बहिरन्तश्च भूतानामचरं चरमेव च ।
सूक्ष्मत्वात्तदविज्ञेयं दूरस्थं चान्तिके च तत् ।।

किसी शै में जुम्बश किसी में सकूँ,
वो मौजूद सब में दुरूँ और बरूँ ।
लतीफ़ ऐसा ऐहसास माज़ूर है,
वही है करीब और वही दूर है ।।

शब्दार्थ –बहिः–बाहर; अन्तः–अन्दर; च–और; भूतानाम्–भूतों के; अचरम्–अचल; चरम्–चल; एव–ही; सूक्ष्मत्वात्–सूक्ष्म होने के कारण; तत्–वह; अविज्ञेयम्–जाना नहीं जा सकता; दूरस्थम्–दूर ठहरा हुआ; अन्तिके–पास में; तत्–वह ।

जुम्बश–चेतनता; सकूँ–जड़; मौजूद–उपस्थित; दरूँ–पिण्ड; बरूँ–ब्रह्माण्ड; लतीफ़–अतिसूक्ष्म; ऐहसास–इन्द्रियाँ; माजूर–असमर्थ; करीब–निकट ।

भावार्थ– वह भूतों के बाहर है और अन्दर भी है; वह चल है और अचल भी है; वह दूर है और पास भी है; वह सूक्ष्म है इसलिये अविज्ञेय है, भौतिक इंद्रियों से उसे जाना नहीं जा सकता है ।

16. अविभक्तं च भूतेषु विभक्तमिव च स्थितम् ।
भूतभर्तृ च तज्ज्ञेयं ग्रसिष्णु प्रभविष्णु च ।।

मुहाल उसकी तकसीम-ऐ ज़ीशाऊर,
मगर उसका हर शै में हिस्सा ज़रूर ।
सज़ावार-ए उरफ़ाँ वो परवरदिगार,
फ़ना-ओ बक़ा का उसी पर मदार ।।

शब्दार्थ –अविभक्तम्–अखण्डित; च–और; भूतेषु–भूतों में; विभक्तम्–खण्डित; इन–तरह; स्थित्म–विद्यमान है; भूतभर्तृ–सारे जीवों का पालक; तत्–वह; ज्ञेयम्–ज्ञेय है, जानने योग्य है; ग्रसिष्णु–संहार करने वाला है; प्रभविष्णु–फिर से उत्पन्न करने वाला (रचयिता) है ।

मुहाल–कठिन; तक़सीम–विभाग; जीशाऊर–बुद्धिमान; सजावार-ए उरफाँ–आध्यात्मिक ज्ञान का विषय; परवरदिगार–भर्ता; फ़ना–मृत्यु; बका–उत्पत्ति; मदार–निर्भरता ।

भावार्थ– वह स्वयं अखण्डित है परन्तु सब भूतों में मानों खण्डित हो कर बैठा है । यह समझना चाहिये कि वह सब प्राणियों का भरण-पोषण करने वाला है, उन्हें ग्रस जाने वाला है, और फिर नये सिरे से उन्हें उत्पन्न करने वाला है ।

17. ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते ।
ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं च हृदि सर्वस्य विष्ठितम् ।।

वही ज़ात-ए नूर आला नूर है,
जो तारीकियों से बहुत दूर है ।
वो उरफ़ाँ का हासिल भी, मक्सूद भी,
वो उरफ़ाँ भी हर दिल में मौजूद भी ।।

शब्दार्थ –ज्योतिषाम्–ज्योतियों की; अपि–भी; तत्–वह; ज्योतिः–ज्योति (प्रकाशक) है; तमसः–अन्धकार से; परम्–परे; उच्यते–कहा जाता है; ज्ञानम्–ज्ञान; ज्ञेयम्–ज्ञेय; ज्ञानगम्यम्–ज्ञान से प्राप्य; च–और; हृदि–हृदयों में; सर्वस्य–सब के; विष्ठितम्–स्थित है ।

ज़ात-ए नूर–दिव्य सत्ता; तारीकियों–अन्धकार; उरफाँ–ज्ञान; हासिल–ज्ञानगम्य; मक्सूद–उद्देश्य ।

भावार्थ– वह ज्योतियों की भी ज्योति है, उसे अंधकार से परे कहा जाता है, वही ज्ञान है, वही ज्ञेय है, वही ज्ञानगम्य है, वह सबके हृदय में स्थित है ।

18. इति क्षेत्रं तथा ज्ञानं ज्ञेयं चोक्तं समासतः ।
मद्भक्त एतद्विज्ञाय मद्भावायोपपद्यते ।।

तुझे मुख़्तसर तौर पर कह दिया,
कि उरफ़ाँ-ओ मक्सूद-ए उरफ़ाँ है क्या ।
बताया तुझे खेत का मैंने हाल,
जो समझे मेरा भक्त पाये वसाल ।।

शब्दार्थ –इति–इस प्रकार; क्षेत्रम्–कर्मक्षेत्र (शरीर); ज्ञानम्–ज्ञान; ज्ञेयम्–ज्ञेय; च–और; उक्तम्–कहा है; समासतः–संक्षेप से; मद्भक्तः–मेरा भक्त; एतत्–इसको; विज्ञाय–जानकर; मद्भावाय–मेरी भावना को पाने के लिये; उपपद्यते– योग्य हो जाता है ।

मुख़्तसर–संक्षेप में; उरफाँ–ज्ञान; मक्सूद-ए उरफाँ–ज्ञेय; वसाल–दर्शन ।

भावार्थ– इस प्रकार क्षेत्र, ज्ञान, ज्ञेय (क्षेत्रज्ञ) के विषय में संक्षेप से बतला दिया । इसे जानकर मेरा भक्त मेरी भावना को पाने के योग्य बनता है ।

19. प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्ध्यनादी उभावपि ।
विकारांश्च गुणांश्चैव विद्धि प्रकृतिसम्भवान् ।।

यह माया अनादि है ला-इब्तदा,
इसी तरह ला-इब्तदा आत्मा ।
गुण अशिया के और उनकी शक्लें अनेक,
ये माया से ज़ाहिर हुई एक-एक ।।

शब्दार्थ – प्रकृतिम्–प्रकृति को; पुरुषम्–पुरुष को; च–और; एव–ही; विद्धि–तू जान ले; अनादी–आदि रहित; उभौ–दोनों को; अपि–भी; विकरान्–विकारों को; गुणान्–सत्व आदि गुणों को; विद्धि–जान ले; प्रकृतिसम्भवान्– प्रकृति से उत्पन्न हुए ।
ला-इब्तदा–अनादि; अशिया–नाम रूप; जाहिर–प्रगट ।

भावार्थ– प्रकृति तथा आत्मा–ये दोनों भी अनादि हैं । और सत्व, रज, तम ये गुण प्रकृति से ही उत्पन्न होते हैं । मूल-प्रकृति 'प्रकृति' है और ये विकार तथा गुण 'विकृति' हैं ।

20. कार्यकारणकर्तृत्वे हेतुः प्रकृतिरुच्यते ।
पुरुषः सुखदुःखानां भोक्तृत्वे हेतुरुच्यते ।।

हवास-ओ बदन जो भी पैदा हुए,
यह माया के बाहिस हुएदा हुए ।
जो सुख-दुःख का होता है एहसास सब,
यह अहसास है आत्मा के सबब ।।

शब्दार्थ – कार्यकरणकर्तृत्वे–कार्य अर्थात् देह, करण अर्थात् देह के उपकरणों (इन्द्रिय आदि) की रचना करने में; हेतुः–कारण; प्रकृतिः–प्रकृति; उच्यते–कही जाती है; पुरुषः–आत्मा; सुख दुःखानाम्–सुख और दुःखों के; भोक्तृत्व–भोग करने में; उच्यते–कहलाता है ।
हवास–इन्द्रियाँ; बदन–शरीर; बाहिस–कारण; हुएदा–प्रगट; एहसास–अनुभव; सबब–कारण ।

भावार्थ – प्रकृति सारे भौतिक कारणों एवं कार्यों का कारण कही जाती है । आत्मा इस संसार में विविध सुख-दुःख के भोग का कारण कही जाती है ।

21. पुरुषः प्रकृतिस्थो हि भुंक्ते प्रकृतिजान्गुणान् ।
कारणं गुणसंगोऽस्य सदसद्योनिजन्मसु ।।

कि माया में जब आत्मा हो मकीं,
गुणों से हो माया के लज़्ज़त गज़ीं ।
गुणों से जो आलूदा हो बेश-ओ कम,
बुरी या भली जून में ले जनम ।।

शब्दार्थ – पुरुषः–आत्मा; प्रकृतिस्थः–प्रकृति में ठहरा हुआ; हि–ही, क्योंकि; भुंक्ते–भोगता है; प्रकृतिजान्–प्रकृति से उत्पन्न; गुणान्–गुणों को; कारणम्–कारण; गुणसंगः–गुणों के साथ संग हो जाना; अस्य–इसका; सद्-असद्-योनि-जन्मसु–अच्छी और बुरी योनियों में जन्म लेने में ।

मकीं–निवास; लज़्ज़त गजीं–भोक्ता; आलूदा–आसक्त; वेश-ओ कम–न्यूनाधिक; जून–योनि ।

भावार्थ– आत्मा प्रकृति में स्थित होकर प्रकृति से उत्पन्न होने वाले गुणों का भोग करता है । इन गुणों के साथ संग हो जाना ही इस आत्मा के अच्छी या बुरी योनियों में जन्म लेने का कारण है ।

22. उपद्रष्टानुमन्ता च भर्ता भोक्ता महेश्वरः ।
परमात्मेति चाप्युक्तो देहेऽस्मिन् पुरुषः परः ।।

महापुरुष तन में जो है जलवा-गर,
जो परमात्मा है महा-ईश्वर ।
वो नाज़र भी है, कार-फ़रमा भी है,
वो लज़्ज़त-गज़ी भी सहारा भी है ।।

शब्दार्थ – उपद्रष्टा–साक्षी; अनुमन्ता–अनुमति देने वाला; च–और; भर्ता–भरण करने वाला; भोक्ता–भोग करने वाला; महेश्वरः–परमात्मा; इति–इस प्रकार से; य–और; अपि–भी; उक्तः–कहा जाता है; देहे–शरीर में; अस्मिन्–इसमें; पुरुषः–आत्मा; पर–परम ।

जलवागर–उपस्थित; नाज़र–दृष्टा;कार–फ़रमा–अनुमन्ता; लज़्जज गजीं–भोक्ता ।

भावार्थ– इस शरीर में परम पुरुष है जिसे परमात्मा कहते हैं, द्रष्टा कहते हैं, अनुमन्ता कहते हैं, भर्ता कहते हैं, भोक्ता कहते हैं, महेश्वर कहते हैं ।

23. य एवं वेत्ति पुरुषं प्रकृतिं च गुणैः सह ।
सर्वथा वर्तमानोऽपि न स भूयोऽभिजायते ।।

अगर आत्मा को कोई जान ले,
गुणों और माया को पहचान ले ।
रहे जैसे चाहे वो जिस हाल में,
न आये तनासख के जंजाल में ।।

शब्दार्थ –यः–जो; एवम्–इस प्रकार से; वेत्ति–जानता है; पुरुषम्–आत्मा को; प्रकृतिम्–प्रकृति को; च–और; गुणैः–सत्व आदि गुणों के; सह–साथ; सर्वथा–सब प्रकार से; वर्तमानः–व्यवहार करने वाला; अपि–भी; न–नहीं; सः–वह; भूयः–फिर; अभिजायते–जन्म लेता है ।

तनासख–आवागमन ।

भावार्थ– जो कोई आत्मा को और गुणों के साथ प्रकृति को इस प्रकार समझ लेता है, वह कैसा ही बर्ताव क्यों न किया करे, उसका पुनर्जन्म नहीं होता ।

24. ध्यानेनात्मनि पश्यन्ति केचिदात्मानमात्मना ।
अन्ये सांख्येन योगेन कर्मयोगेन चापरे ।।

कोई ध्यान से मन में डाले नज़र,
तो देखे वो खुद आत्मा ज़लवा गर ।
कोई साँख़्य के योग से देख ले,
कोई देख ले योग से कर्म के ।।

शब्दार्थ –ध्यायेन–ध्यान-योग द्वारा; आत्मनि–आत्मा में; पश्यन्ति–देखते हैं; केचित्–कोई तो; आत्मानम्–परमात्मा को; आत्मना–मन से अर्थात् ध्यान-योग से; अन्ये–और दूसरे; सांख्येन–सांख्य (ज्ञान)

से; योगेन–मार्ग से (ज्ञान-योग से); कर्मयोगेन–कर्म मार्ग के अनुसरण से (कर्म-योग से); च–और; अपरे–दूसरे ।

जलवा-गर–प्रगट ।

भावार्थ– कुछ लोग ध्यानयोग द्वारा, दूसरे लोग ज्ञानयोग द्वारा और कुछ लोग कर्मयोग द्वारा स्वयं से अर्थात् अपने शरीर से निष्काम आत्मा को अलग देख लेते हैं ।

25. अन्ये त्वेवमजानन्तः श्रुत्वान्येभ्य उपासते ।
तेऽपि चातितरन्त्येव मृत्युं श्रुतिपरायणाः ।।

मगर इनसे हैं बे-खबर भी कई,
करें सुन-सुना कर जो पूजा मेरी ।
जो सुन लें उसी में वो सरशार हों,
फ़ना के समुन्दर में भी पार हों ।।

शब्दार्थ –अन्ये–दूसरे लोग; तु–और; एवम्–इस प्रकार; अजानन्तः–आध्यात्मिक ज्ञान से रहित; श्रुत्वा–सुनकर; अन्येभ्यः–दूसरों से; उपासते–उपासना करते हैं; ते–वे; अपि–भी; च–और; अतितरन्ति–पार कर लेते हैं; एव–ही; मृत्युम्–मृत्यु को; श्रुतिपरायणाः–श्रवण विधि से रुचि रखने वाले ।

बे-खबर–अनजान; सरशार–लगे हुए; फ़ना–मृत्यु ।

भावार्थ– परन्तु कुछ अन्य लोग (योग के इन मार्गों को) न जानते हुए दूसरे लोगों से (प्रकृति तथा पुरुष के भेद को) सुनकर वैसा ध्यान धरते हैं । वे भी जो कुछ उन्होंने सुना है वे श्रवण परायण पुरुष भी मृत्यु रूप संसार सागर से निःसन्देह तर जाते हैं ।

26. यावत्संजायते किंचित्सत्त्वं स्थावरजंगमम् ।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञसंयोगात्तद्विद्धि भरतर्षभ ।।

मिले खेत से खेत का राज़-दाँ,
तो अर्जुन इसी से हो सब कुछ इयाँ ।
किसी में है जुम्बश, किसी में क्याम,
इसी मेल से पायें हस्ती तमाम ।।

शब्दार्थ –यावत्–जितना, संजायते–उत्पन्न होता है; किंचित्–कुछ भी; सत्त्वम्–वस्तु; स्थावरजंगमम्–चर व अजर; क्षेत्रक्षेत्रज्ञसंयोगात्–शरीर व आत्मा के सहाय से; तत्–उसको; विद्धि–जान ले; भरतर्षभ–हे भरतकुल में श्रेष्ठ अर्जुन ।

राज़-दाँ–परमात्मा; इयाँ–प्रगट; जुम्बश–चेतन; क्याम–जड़; हस्ती–उत्पत्ति ।

भावार्थ– हे भरत-कुल में श्रेष्ठ अर्जुन ! यह समझ ले कि अचर व चर जो कोई भी वस्तु उत्पन्न होती है वह शरीर तथा आत्मा के संयोग से ही उत्पन्न होती है ।

27. समं सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्तं परमेश्वरम् ।
विनश्यत्स्वविनश्यन्तं यः पश्यति स पश्यति ।।

जो है कुछ नज़र तो उसी को नज़र,
नज़र में रहे जिसकी परमेश्वर ।
है सब जान वालों में जानी वही,
कि फ़ानी में है ग़ैर फ़ानी वही ।।

शब्दार्थ –समम्–सम-भाव वाले; सर्वेषु–सब; भूतेषु–भूतों में; तिष्ठन्तम्–ठहरे हुए; परमेश्वरम्–परमेश्वर को; विनश्यत्सु–विनाशियों में; अविनश्यन्तम्–अविनाशी तत्त्व को; यः–जो; पश्यति–देखता है; सः–वह; पश्यति–यथार्थ में देखता है ।

जानी–चेतन सत्ता; फ़ानी–नश्वर; ग़ैर-फ़ानी–अनश्वर ।

भावार्थ– इन नाशवान् वस्तुओं में जो अविनाशी तत्त्व परमेश्वर को देखता है, जो सम्पूर्ण जड़-चेतन में सम-भाव से विराजमान है, वही यथार्थ में देखता है ।

28. समं पश्यन्हि सर्वत्र समवस्थितमीश्वरम् ।
न हिनस्त्यात्मनात्मानं ततो याति परां गतिम् ।।

जो उस ज़ात-ए मुतलक पे रक्खे यकीं,
कि हर इक माँ में वही हैं मकीं ।
करे खुद न वो आत्मा को तबाह,
कि उत्तम गति की यह अच्छी है राह ।

शब्दार्थ –समम्–सम-भाव से; पश्यन्–देखता हुआ; हि–ही, क्योंकि; सर्वत्र–सब जगह; समवस्थितम्–विराजमान; ईश्वरम्–ईश्वर को; न–नहीं; हिनस्ति–मारता है; आत्मना–अपने से; आत्मानम्–स्वयं को; ततः–उसके बाद; याति–पहुँचता है; पराम्–उत्कृष्ट; गतिम्–गति को ।

ज़ात-ए मुतलक–पूर्णसत्ता; यकीं–विश्वास; मकीं–निवासित; तबाह–नाश ।

भावार्थ– जो व्यक्ति परमात्मा को सर्वत्र व प्रत्येक जीव में समान रूप से वर्तमान देखता है, वह अपने मन के द्वारा स्वयं को नष्ट नहीं होने देता । इसी से वह परम गति पा लेता है ।

29. प्रकृत्यैव च कर्माणि क्रियमाणांनि सर्वशः ।
यः पश्यति तथात्मानमकर्तारं स पश्यति ।।

जो समझे कि दुनियाँ को सब रेल-पेल,
है माया का करतब है, माया का खेल ।
है ख़ुद आत्मा पुरसकूँ बे-अमल,
नज़र है उसी की नज़र बे-खलल ।।

शब्दार्थ –प्रकृत्या–प्रकृति के द्वारा; एव–ही; च–और; कर्माणि–कर्मों को; क्रियमाणानि–सम्पन्न किये गये; सर्वशः–सब प्रकार से' यः–जो; पश्यति–देख लेता है; आत्मानम्–आत्मा को; अकर्त्तारम्–कर्म न करता हुआ; सः–वह ।

पुरसकूँ–प्रशान्त; बे-अमल–अकर्ता; बे-खलल–निर्दोष ।

भावार्थ– जो व्यक्ति इस बात को देख लेता है कि सब कर्म सब प्रकार से केवल प्रकृति द्वारा किये जा रहे हैं, आत्मा तो अकर्ता है, वह कर्म करने वाला नहीं है, वही यथार्थ में देखता है ।

30. यदा भूतपृथग्भावमेकस्थमनुपश्यति ।
तत एव च विस्तारं ब्रह्म सम्पद्यते तदा ।।

जिसे आये कसरत में वाहदत नज़र,
कि हर रंग में है वही जलवा-गर ।
जो वाहदत से कसरत का समझे ज़हूर,
ख़ुदा से वो वासिल वही बिलज़रूर ।।

शब्दार्थ –यदा–जब; भूतपृथग्भावम्–पाँच भूतों की पृथक्-पृथक् सत्ता को; एकस्थम्–एक जगह स्थित; अनुपश्यति–देख लेता है; ततः–उससे; एव–ही; च–और; विस्तारम्–भूतों के विस्तार को; ब्रह्म–ब्रह्म; संपद्यते–प्राप्त होता है; तदा–तब ।

कसरत–नानात्व; वाहदत–एकत्व; जलवा-गर–प्रगट; ज़हूर–प्रगट; वासिल–प्राप्त; बिल-ज़रूर–निःसन्देह ।

भावार्थ– जब यह देख लेता है कि पंचभूतों का प्रकृति का जगत् पृथक् है और एकस्थ आत्मा-परमात्मा का जगत् पृथक् है, इन पृथक्-पृथक् सत्ताओं से ही यह सारा विस्तार हो रहा है, तब ब्रह्म प्राप्त होता है ।

31. अनादित्वान्निर्गुणत्वात्परमात्मायमव्ययः ।
शरीरस्थोऽपि कौन्तेय न करोति न लिप्यते ।।

मकीं तन के अन्दर है परमात्मा,
अनादि गुणों से बरी ला-फ़ना ।
अमल से वो फ़ारग है कुन्ती के लाल,
अमल से न आलूदा हो ला-इज़ाल ।।

शब्दार्थ –अनादित्वात्–अनादि होने के कारण; निर्गुणत्वात्–निर्गुण होने के कारण; अयम्–यह; अव्ययः–अविनाशी है; शरीरस्थः–शरीर में वास करने वाला; अपि–भी; कौन्तेय–हे अर्जुन; करोति–करता है लिप्यते–किसी कर्म में लिप्त होता है ।

मकीं–स्थित; बरी–रहित; जा-फ़ना–अविनाशी; फ़ारग–निवृत्त; आलूदा–लिप्त; ला-इज़ाल–विकार रहित ।

भावार्थ– हे अर्जुन! क्योंकि वह अव्यय, अविनाशी परमात्मा अनादि है, निर्गुण है, इसलिये शरीर में रहता हुआ भी न कुछ कर्म करता है, न किसी कर्म में लिप्त होता है ।

32. यथा सर्वगतं सौक्ष्म्यादाकाशं नोपलिप्यते ।
सर्वत्रावस्थितो देहे तथात्मा नोपलिप्यते ।।

है आकाश दुनियाँ पे जैसे मुहीत,
मुजल्ला, मुसफ़्फ़ा कि है वो बसीत ।
बदन में यूहीं आत्मा है मकीं,
मगर इससे आलूदा होती नहीं ।।

शब्दार्थ – यथा–जिस प्रकार; सर्वगतम्–सर्वव्यापी; सौक्ष्म्यात्–सूक्ष्म होने के कारण; आकाशम्–आकाश; उपलिप्यते–किसी भी वस्तु से लिप्त होता है; सर्वत्र–सब जगह; अवस्थितः–ठहरा हुआ; देहे–देह में; तथा–उसी प्रकार; उपलिप्यते–लिप्त होता है ।
मुहीत–आच्छादित; मुजल्ला–प्रकाशित; मुसफ़्फ़ा–शुद्ध; बसीत–फैला हुआ ।

भावार्थ – जिस प्रकार सर्वव्यापी आकाश सूक्ष्मता के कारण किसी वस्तु से लिप्त नहीं होता, उसी प्रकार सब देहों में स्थित आत्मा भी किसी प्रकार लिप्त नहीं होता ।

33. यथा प्रकाशयत्येकः कृत्स्नं लोकमिमं रविः ।
क्षेत्रं क्षेत्री तथा कृत्स्नं प्रकाशयति भारत ।।
हो सूरज से जिस तरह रोशन जहाँ,
चमक उठे भारत ज़मीं-आसमाँ ।
इसी तरह खेतों पे छा जाये नूर,
जो हो खेत के राज़-दाँ का ज़हूर ।।

शब्दार्थ – यथा–जैसे; प्रकाशयति–प्रकाशित करता है; एकः–एक ही; कृत्स्नम्–सम्पूर्ण; लोकम्–जगत् को; इमम्–इस; रविः–सूर्य; क्षेत्रम्–शरीर; क्षेत्री–आत्मा; तथा–उसी प्रकार; भारत–हे अर्जुन ।
राज़-दाँ–परमात्मा; ज़हूर–दर्शन ।

भावार्थ– जिस प्रकार एक ही सूर्य इस समूचे जगत् को प्रकाशित करता है, उसी प्रकार शरीर के भीतर स्थित एक आत्मा सारे शरीर को चेतना से प्रकाशित करती है ।

34. क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोरेवमन्तरं ज्ञानचक्षुषा ।
भूतप्रकृतिमोक्षं च ये विदुर्यान्ति ते परम् ।।

जो चश्म-ए बसीरत से करता है ग़ौर,
कि खेत और है राज़-दाँ उसका और ।
जो माया से दे हस्तिओं को निज़ात,
बलन्दी में हासिल करे वस्ल-ए ज़ात ।।

शब्दार्थ – क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोः–शरीर और आत्मा; एवम्–इस प्रकार; अन्तरम्–अन्तर को, भेद को; ज्ञानचक्षुषा–ज्ञान की चक्षुओं से; भूतप्रकृतिमोक्षम्–पंचभूतात्मक प्रकृति से आत्मा के मोक्ष को; च–और; ये–जो; विदुः–जान लेते हैं; यान्ति–प्राप्त कर लेते हैं; ते–वे; परम्–परमपद को ।

चश्म-ए बसीरत–ज्ञान-चक्षु; निजात–मुक्ति; वस्ल-ए ज़ात–ईश्वर-प्राप्ति ।

भावार्थ– जो लोग ज्ञान-चक्षुओं से शरीर एवं शरीर के स्वामी आत्मा के अंतर को जान लेते हैं और भव-बंधन से मुक्ति की विधि को भी जानते हैं उन्हें परम लक्ष्य प्राप्त होता है ।